[1991] 4 उम० नि० प० 868

सचिव, सिचाई विभाग, उड़ीसा और अन्य

बनाम

जी० सी० राय

12 दिसम्बर, 1991

मु० न्या० के० एन० सिंह, न्या० पी० बी० सावंत, न्या० एन० एम० कासलीवाल, न्या० वी० पी० जीवन रेड्डी और न्या० जी० एन० रे

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 - धारा 30—पंचाट—पंचाट में कारण का अभाव—केवल इस आधार पर कि कारण वर्णित नहीं किए गए हैं अधिनिर्णय अपास्त नहीं किया जा सकता।

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940, धारा 29—सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 धारा 34—वादकालीन ब्याज—अधिनिर्णीत करने के सिद्धांत—पक्षकारों के बीच हुए करार में ब्याज अधिनिर्णीत करने का प्रतिषेध न होना – मध्यस्थ को ब्याज मंजूर करने की शक्ति होगी—यह उपधारणा की जानी चाहिए कि ब्याज मंजूर किया जाना करार की विवक्षित शर्त है।

अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी जी० सी० राय के साथ एक जलशीर्ष-तंत्र के निर्माण हेतु एक करार किया। करार का खंड 23 इस प्रकार है:—

> "विनिर्देशों···आदि के अर्थ से संबंधित सभी प्रश्न और विवाद या कोई अन्य प्रश्न या दावा, अधिकार, मामला या बात, जो भी हो, जो संविदा से उद्भूत हो या उससे संबंधित हो जो चाहे कार्य की प्रगति के दौरान उद्भूत हुई हो या कार्य के पूरे किए जाने के पश्चात् या उसके छोड़ दिए जाने के पश्चात् उद्भूत हुई हो एकमात्र मध्यस्थ को निर्देशित की जाएगी।"

कार्य पूरा हो जाने पर सरकार ने प्रत्यर्थी द्वारा दावा की गई कतिपय राशियों को स्वीकार नहीं किया जिसके परिणामस्वरूप पक्षकारों के बीच विवाद उठा। 6 अगस्त, 1982 को मध्यस्थ ने विवाद का अधिनिर्णय दिया। मध्यस्थ ने प्रत्यर्थी को कतिपय धनराशि प्राप्त करने के लिए हकदार ठहराया। साथ ही 9 प्रतिशत की दर से ब्याज प्राप्त करने के लिए हकदार भी ठहराया। प्रत्यर्थी ने न्यायालय के समक्ष एक आवेदन इस हेतुक से फाइल किया कि अधिनिर्णय को न्यादेश बना दिया जाए जिस पर उड़ीसा राज्य की ओर से प्रतिवाद किया गया था। अधीनस्थ न्यायाधीश ने 29 नवंबर, 1982 के अपने आदेश द्वारा उक्त अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया। प्रत्यर्थी द्वारा अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर दिया और अधिनिर्णय को न्यादेश बना दिया। अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय से इजाजत लेकर प्रस्तुत अपील फाइल की है। इन अपीलों में 2 प्रश्न उठाए गए। अर्थात् (i) अधिनिर्णय दूषित है क्योंकि उसमें कारण अंतर्विष्ट नहीं हैं और (ii) मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की

1991(12) eILR(PAT) SC 1

अधिकारिता नहीं थी। प्रश्नों का उत्तर देते हुए,

अभिनिर्धारित—अधिनिर्णय को कारणों के अभाव के आधार पर ही अपास्त नहीं किया जा सकता। जहां माध्यस्थम् करार में ही अधिनिर्णय के लिए कारण अनुबंधित किए गए हों, वहां मध्यस्थ पर यह विधिक बाध्यता है कि वह कारण वर्णित करे। (पैरा 2)

न्यायालय ने दो सिद्धांत अधिकथित किए थे। (i) निर्देश का यह एक विवक्षित निबंधन है कि मध्यस्थ विद्यमान विधि के अनुसार विवाद का विनिश्चय करेगा और ब्याज की बाबत ऐसा अनुतोष देगा यदि वह विवाद का विनिश्चय करता जैसा कि कोई न्यायालय दे सकता था। (ii) यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 वस्तुतः माध्यस्थम् कार्यवाहियों को लागू नहीं होती है किंतु उस धारा का सिद्धांत मध्यस्थ द्वारा ऐसे मामलों में ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए लागू किया जाएगा, जिन मामलों में किसी वाद में किसी न्यायालय को धारा 34 के अधीन आने वाली विषय-वस्तु पर अधिकारिता हो और वह ब्याज के लिए डिक्री मंजूर कर सकता हो। (पैरा 26)

(i) कोई व्यक्ति जो ऐसे धन के उपयोग से वंचित कर दिया जाता है जिसके लिए वह विधिमान्य रूप से हकदार है, उसे इस प्रकार वंचित किए जाने के लिए प्रतिकर प्राप्त करने का अधिकार है चाहे इसे किसी भी नाम से कहा जाए। चाहे इसे ब्याज, प्रतिकर या नुकसानी कहा जाए। यह आधारभूत बात मध्यस्थ के समक्ष विवाद के लंबित रहने की कालावधि के लिए उतनी ही विधिमान्य है जितनी कि वह निर्देश पर मध्यस्थ द्वारा विचार करने के पहले की कालावधि के लिए विधिमान्य है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 का यह सिद्धांत है और मध्यस्थ के मामले में इसके विपरीत अभिनिर्धारित करने के लिए कोई कारण या सिद्धांत नहीं है। (ii) पक्षकारों के बीच उठने वाले विवादों को सुलझाने के लिए मध्यस्थ एक आनुकल्पिक फोरम है। यदि ऐसा है तो उसे पक्षकारों के बीच उठने वाले सभी विवादों या मतभेदों को विनिश्चित करने की शक्ति होनी चाहिए। यदि मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की कोई शक्ति नहीं है तो ऐसे ब्याज का दावा करने वाले पक्षकारों को उस प्रयोजन के लिए न्यायालय में आवेदन करना होगा भले ही उन्होंने मध्यस्थ से अन्य दावों के संबंध में समाधानप्रद अनुतोष प्राप्त कर लिया हो। इससे कार्यवाहियों का बाहुल्य होगा। (iii) मध्यस्थ करार के आधार पर अस्तित्व में आता है। पक्षकारों को इस बात की छूट होती है कि वे उसे ऐसी शक्तियां प्रदत्त करें और अनुसरण किए जाने के लिए ऐसी प्रक्रिया विहित करें जो वे ठीक समझते हैं और जहां तक ये बातें विधि के विपरीत नहीं हैं, ऐसा किया जा सकता है। (माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 और तीन के उपबंध को उदाहरण के साथ समझने की दृष्टि से देखिए) साथ ही करार विधि के अनुरूप अवश्य ही होना चाहिए। मध्यस्थ का यह कर्तव्य है कि वह देश की साधारण विधि और करार के अनुसार कार्यवाही करे और अपना अधिनिर्णय दे। (iv) पिछले कई वर्षों से इंग्लिश और भारतीय न्यायालयों ने इस धारणा के आधार पर कार्य किया है कि जहां करार से कोई पक्षकार प्रतिषिद्ध न हो और निर्देश का पक्षकार ब्याज के लिए दावा करता है तो मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति होनी ही चाहिए। थावरदास वाले मामले का इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में

1991(12) eILR(PAT) SC 1

अनुसरण नहीं किया गया है। उक्त विनिश्चय इस आधार पर स्पष्ट किया गया है और सुभिन्न बतलाया गया है कि उक्त मामले में ब्याज के लिए कोई दावा नहीं किया गया था किंतु अपरिनिर्धारित नुकसानी के लिए ही दावा किया गया था। यह बात बार-बार कही गई है कि उक्त निर्णय में के संप्रेक्षणों का आशय ऐसा कोई आत्यंतिक या सर्व-व्यापक नियम अधिकथित करने का नहीं था जैसा कि पहली बार देखने पर प्रतीत होता है। जैना के मामले तक इस देश के संभवतः सभी न्यायालयों ने वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की मध्यस्थ की शक्ति को विधिमान्य ठहराया था। सातत्य और निश्चितता विधि का बहुत अधिक वांछनीयतत्व है। (v) वादकालीन-ब्याज अधिष्ठायी-विधि की विषय-वस्तु उस प्रकार नहीं है जिस प्रकार कि "निर्देश-पूर्व की कालावधि (के पहले की कालावधि के लिए ब्याज है। पक्षकारों के बीच पूर्व न्याय करने की दृष्टि से इस शक्ति का हमेशा ही अनुमान किया गया है। (पैरा 43)

जहां पक्षकारों के बीच करार में ब्याज मंजूर किए जाने का प्रतिषेध न हो और जहां कोई पक्षकार ब्याज का दावा करता है और उक्त विवाद (मूल राशि के लिए या उससे स्वतंत्र रूप से दावा किया जाता है।) मध्यस्थ को निर्देशित किया जाता है, तो उसे वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति होगी। यह इस कारण से है कि ऐसे मामले में यह अवश्य उपधारण की जानी चाहिए कि पक्षकारों के बीच करार के निबंधनों में ब्याज एक विवक्षित निबंधन था और इसलिए जब पक्षकार अपने सभी विवादों को निर्देशित करते हैं या ब्याज के आधार पर विवाद को मध्यस्थ को निर्देशित करते हैं तो उसे ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति होगी। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक मामले में मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज आवश्यक रूप से ही अधिनिर्णीत करना चाहिए। यह ऐसी बात है तो उसके विवेकाधिकार के अंतर्गत आती है जिसका प्रयोग वह मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए करता है। साथ ही न्याय के उद्देश्यों को भी ध्यान में रखता है। (पैरा 44)

अनुसरित निर्णय

पैरा

[1989] 2 एस० सी० सी० 721 :
रायपुर विकास प्राधिकरण और अन्य बनाम चोखामल कांट्रेक्टर्स और अन्य. 2

प्रभेदित निर्णय

[1988] 1 एस० सी० आर० 253 :
कार्यपालक इंजीनियर, सिंचाई, गालीमाला और अन्य बनाम अवदूत जैना. 2

निर्दिष्ट निर्णय

[1972] 3 एस० सी० आर० 233 :
मध्य प्रदेश राज्य बनाम सेट एण्ड स्केल्टन प्रा० लि०; 30

1991(12) eILR(PAT) SC 1

[1971] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 66 :
बंगो स्टील वाला मामला; 9

[1971] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 233 :
अशोक कंस्ट्रक्शन कंपनी बनाम भारत संघ; 9

[1967] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 105 :
मदन लाल वाला मामला; 9

[1967] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 324 :
रोशन लाल वाला मामला; 9

[1967] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 325 :
भारत संघ बनाम बंगो स्टील फर्नीचर प्रा॰ लि॰; 25

[1966] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 580 :
भारत संघ बनाम वेस्ट पंजाब फैक्ट्रीज लि॰; 40

[1964] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 164 :
भारत संघ बनाम ए॰ एल॰ रलिया राम; 40

[1961] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 676 :
सतिन्दर सिंह वाला मामला; 9

[1960] 2 एस॰ सी॰ आर॰ 309 :
नचप्पा चेट्टियार वाला मामला; 9

[1955] 2 एस॰ सी॰ आर॰ 48 :
थावरदास वाला मामला; 9

[1951) 1 के॰ बी॰ 240 :
चंद्रिस वाला मामला; 10

[1949] 2 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 62 :
पोडार ट्रेडिंग कं॰ लि॰ बनाम फ्रेंकोइस थागेर; 15

[1928] ए॰ सी॰ 492 :
इंगलवूड पल्प एंड पेपर कं॰ लि॰ बनाम न्यूब्रुन्स विक इलैक्ट्रीकल पावर कमीशन; 22

[1925] ए॰ सी॰ 520 :
स्विफ्ट एंड कं॰ बनाम बोर्ड आफ ट्रेड; 22

[1851] 138 इंग्लिश रिपोर्ट्स 603 :
एडवर्ड्स बनाम दि ग्रेट वेस्टर्न रेलवे कंपनी; 13

146 सी॰ एल॰ आर॰ 206 :
एन॰ एस॰ डब्ल्यू॰ बनाम अटकिंसन-लेघटन ज्वाइंट वेंचर; 34

1991(12) eILR(PAT) SC 1

65 आई० ए० 66 :
भारत संघ बेस्ट पंजाब फैक्ट्रीज लि०. 40

सिविल अपीली अधिकारिता : 1986 की सिविल अपील सं० 1403.

इसके साथ ही 1985 की सिविल अपील सं० 2586 की भी सुनवाई की गई।

1982 की प्रकीर्ण अपील सं० 543 में उड़ीसा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 20 सितम्बर, 1985 को दिए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री एन० एस० हेगड़े, जी० एल० सांघी, वरिष्ठ अधिवक्ता और आर० के० मेहता, अधिवक्ता
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री मिलन बनर्जी और आर० के० गर्ग, वरिष्ठ अधिवक्ता अरुण मदान, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय मु० न्या० के० एन० सिंह ने दिया।

मु० न्या० सिंह—ये दो अपीलें उड़ीसा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध हैं जिसमें मध्यस्थ द्वारा दिए गए अधिनिर्णय को न्यादेश बनाया गया था। अपीलार्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष अधिनिर्णय की विधिमान्यता पर दो आधारों पर आक्षेप किया है अर्थात् (1) अधिनिर्णय दूषित है क्योंकि उसमें कारण अंतर्विष्ट नहीं हैं और, (2) मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता नहीं थी।

2. पहले प्रश्न पर इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने रायपुर विकास प्राधिकरण और अन्य बनाम चोखामल कांट्रैक्टर्स और अन्य[1] वाले मामले में विचार किया था। संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिनिर्णय को कारणों के अभाव के आधार पर ही अपास्त नहीं किया जा सकता। संविधान न्यायपीठ ने आगे यह भी अभिनिर्धारित किया था कि जहां माध्यस्थम करार में ही अधिनिर्णय के लिए कारण अनुबंधित किए गए हों, वहां मध्यस्थ पर यह विधिक बाध्यता है कि वह कारण वर्णित करे। इस प्रकार पहला प्रश्न अपीलार्थियों के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया गया। जहां तक दूसरे प्रश्न का संबंध है, जब अपील की खंड न्यायपीठ द्वारा सुनवाई प्रारम्भ की गई तो अपीलार्थियों ने कार्यपालक इंजीनियर, सिंचाई गालीमाला और अन्य बनाम अवदूत जैना[2] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया। उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना यदि मध्यस्थ को निर्देश किया जाता है तो उसे वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं होती है। प्रत्यर्थियों की ओर से इस दृष्टिकोण के सही होने पर आक्षेप किया गया। जो न्यायपीठ सुनवाई कर रहा था, उसने इन अपीलों को तारीख 15 मार्च, 1991 के आदेश द्वारा संविधान न्यायपीठ को निर्देशित कर दिया।

[1] [1989] 2 एस० सी० सी० 721.
[2] [1988] 1 एस० सी० आर० 253.

क्योंकि विद्वान् न्यायाधीशों का यह मत था कि इस न्यायालय ने जैना वाले मामले में जो मत अपनाया था उसके सही होने के संबंध में उसने यह अभिनिर्धारित किया था कि मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की कोई शक्ति नहीं होती है और इस मत पर वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित है। इस प्रकार ये अपीलें इस संविधान न्यायपीठ के सामने प्रस्तुत की गई हैं।

3. हमारे समक्ष जो दलीलें दी गई हैं, उन पर विचार करने के पहले हम 1986 की सिविल अपील सं० 1403 में अंतर्वलित तथ्यों के प्रति निर्देश करना उपयुक्त समझते हैं। 27 अप्रैल, 1977 को अपीलार्थी उड़ीसा सरकार और जी० सी० राय प्रत्यर्थी ने फुलवानी में जलशीर्ष-तंत्र के निर्माण हेतु एक करार किया। संविदा के खंड 23 में एक उपबंध था जो माध्यस्थम् के जरिए विवादों को सुलझाने के संबंध में था। खंड 23 इस प्रकार है:—

> "विनिर्देशों आदि···के अर्थ से सम्बन्धित सभी प्रश्न और विवाद या कोई अन्य प्रश्न या दावा अधिकार, मामला या बात, जो भी हो, जो संविदा से उद्‌भूत हो या उससे सम्बन्धित हो जो चाहे कार्य की प्रगति के दौरान उद्‌भूत हुई हो या कार्य के पूरे किए जाने के पश्चात् या उसके छोड़ दिए जाने के पश्चात् उद्‌भूत हुई हो, एकमात्र मध्यस्थ को निर्देशित की जाएगी।"

उक्त कार्य 22 फरवरी, 1980 को पूरा हो गया था। सरकार ने जी० सी० राय द्वारा दावा की गई कतिपय राशियों को स्वीकार नहीं किया था जिसके परिणामस्वरूप पक्षकारों के बीच विवाद उठा। विवाद मध्यस्थ को निर्देशित किया गया जिसने 6 अगस्त, 1982 को अधिनिर्णय दिया। मध्यस्थ ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी जी० सी० राय कतिपय धनराशि प्राप्त करने के लिए हकदार थे और साथ ही वे अधिनिर्णीत रकम पर 20 मार्च, 1980 से संदाय किए जाने की तारीख तक या डिक्री की तारीख तक जो भी पूर्ववर्ती हो, 9 प्रतिशत की दर से ब्याज प्राप्त करने के लिए हकदार थे। ऐसा प्रतीत होता है कि 20 मार्च, 1980 स्पष्ट रूप से ही वह तारीख थी जिस तारीख को जी० सी० राय ने, रकम का दावा किया था जो उसे शोध्य हो गई थी क्योंकि संकर्म 20 फरवरी, 1980 को पूरा हो गया था। प्रत्यर्थी ने न्यायालय के समक्ष एक आवेदन इस हेतुक से फाइल किया कि अधिनिर्णय को न्यादेश बना दिया जाए जिस पर उड़ीसा राज्य की ओर से प्रतिवाद किया गया था। अधीनस्थ न्यायाधीश ने तारीख 29 नवम्बर, 1982 के अपने आदेश द्वारा उक्त अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया। प्रत्यर्थी द्वारा अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर दिया और अधिनिर्णय को न्यादेश बना दिया। तत्पश्चात् अपीलार्थी ने इस न्यायालय से इजाजत लेकर यह अपील फाइल की। जैसा पहले वर्णित किया गया है, इन अपीलों में 2 प्रश्न उठाए गए थे। पहला प्रश्न संविधान न्यायपीठ ने पहले ही विनिश्चित कर दिया है। दूसरा प्रश्न जो वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत किए जाने के बारे में मध्यस्थ की अधिकारिता से सम्बन्धित है, हमारे समक्ष विचारार्थ है। हम 1991 की सिविल अपील सं० 2565 में अंतर्वलित तथ्यों के प्रति निर्देश करना आवश्यक नहीं समझते हैं। इतना ही कहना पर्याप्त है कि उस अपील में भी उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि प्रतिकूल करार के अभाव में

मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता है।

4. पक्षकारों के बीच किसी विवाद का अवधारण न्यायालय द्वारा या तो न्यायिक प्रक्रिया के जरिए किया जा सकता है या ऐसे विवाद का अवधारण गैर-न्यायिक प्रक्रिया के जरिए मध्यस्थ के द्वारा किया जा सकता है। न्यायालय द्वारा विवाद का निपटारा जब न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है, तब वह खर्चीला और अधिक समय लगने वाला होता है। अतः सामान्य तौर पर विलंब और खर्चे से बचने की दृष्टि से पक्षकार माध्यस्थम् कार्यवाहियों द्वारा विवाद के निपटाए जाने की वैकल्पिक पद्धति को पसंद करते हैं विवाद के निपटाए जाने की इन दो सुविज्ञात प्रक्रियों के अलावा कानूनी माध्यस्थम् के जरिए विवादों को सुलझाने की एक वैकल्पिक पद्धति और है। कानूनी माध्यस्थम् कानूनी उपबंधों द्वारा विनियमित होते हैं जबकि माध्यस्थम् की प्रक्रिया के द्वारा अपने विवादों को निपटाने के लिए करार करने वाले पक्षकार ऐसे करार करने के लिए स्वतंत्र हैं जिनकी प्रक्रिया, पद्धति और विवाद को निपटाने के तरीके के संबंध में इनमें करार हुआ हो। परन्तु उपबंध यह है कि ये बातें विधि के किसी उपबंध के विपरीत नहीं होनी चाहिए। कई बार जब न्यायालय के समक्ष न्याय निर्णयन के लिए कोई वाद लंबित रहता है तो न्यायालय पक्षकारों की सहमति से विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्देशित कर देता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य में बढ़ोत्तरी के कारण और साथ ही न्यायालयों में वादों और अपीलों के निपटारे में होने वाले विलंब के कारण अब मध्यस्थों के वैकल्पिक फोरम के माध्यम से विवादों के निपटाए जाने की दशा में काफी तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है। माध्यस्थम् के जरिए विवादों के तय किए जाने की वैकल्पिक पद्धति त्वरित और सुविधाजनक प्रक्रिया है जो पूरे विश्वास से अपनाई जा रही है। भारत में प्राचीनकाल से ही पंचों द्वारा विवादों का निपटाया जाना एक सामान्य प्रक्रिया रही है जिससे कि विवाद अनौपचारिक तरीके से निपटाए जाते रहे हैं। किंतु अब माध्यस्थम् कानूनी उपबंधों द्वारा विनियमित होता है।

5. भारत में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की द्वितीय अनुसूची में माध्यस्थम् विधि से संबंधित उपबंध अंतर्विष्ट हैं और माध्यस्थम् की सभी कार्यवाहियां इन उपबंधों द्वारा विनियमित होती थीं। तत्पश्चात् विधानमंडल ने माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 इस दृष्टि से अधिनियमित किया जिससे कि माध्यस्थम् सम्बन्धी विधि का समेकन और संशोधन किया जा सके। अधिनियम की धारा 47 के आधार पर अधिनियम के उपबंध सभी माध्यस्थमों और अधिनियम के अधीन की गई सभी कार्यवाहियों को लागू होने थे सिवाय जहां तक कि किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित हो। अधिनियम की धारा 3 इस प्रकार है:—

> "माध्यस्थम् करार में विवक्षित उपबंध : जब तक कि माध्यस्थम् करार में भिन्न आशय अभिव्यक्त न हो, प्रथम अनुसूची में उपवर्णित उपबंध वहां तक माध्यस्थम् करार के अंतर्गत समझे जाएंगे जहां तक वे उस निर्देश को लागू हों।"

अधिनियम की प्रथम अनुसूची में 8 नियम वर्णित हैं। हमारे प्रयोजन के लिए सिवाय नियम 8 के अन्य नियमों के प्रति विस्तार से उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। नियम 8 में उपबंधित है कि निदेश और पंचाट के खर्च मध्यस्थों या अधिनिर्णायक के विवेकाधिकार

में होंगे जो यह निदेश दे सकेंगे कि ऐसे खर्च या उनका कोई भाग, किसको, किसके द्वारा और किस रीति से संदत्त किया जाएगा और इस प्रकार संदत्त किए जाने वाले खर्चों की रकम या उसके किसी भाग को विनिर्धारित या तय कर सकेंगे और विधि-व्यवसायी तथा कक्षीकार के बीच संदेय खर्चे अधिनिर्णीत कर सकेंगे। धारा 41 में न्यायालय की प्रक्रिया और शक्तियां वर्णित हैं। धारा 2ग में यथा-परिभाषित "न्यायालय" पद से सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत मध्यस्थ सम्मिलित नहीं है। धारा 41 को समग्र रूप से वर्णित करना उपयुक्त होगा। उक्त धारा इस प्रकार है:—

"41. न्यायालय की प्रक्रिया और शक्तियां:—इस अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए,

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के उपबंध इस अधिनियम के अधीन न्यायालय के समक्ष की सब कार्यवाहियों को और सब अपीलों को लागू होंगे, तथा

(ख) माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनके संबंध में न्यायालय को द्वितीय अनुसूची में उपवर्णित विषयों में से किसी के बारे में आदेश पारित करने की वही शक्ति होगी जो उसे न्यायालय के समक्ष की किन्हीं कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनके सम्बन्ध में हो;

परन्तु खंड (ख) में कोई भी बात किसी ऐसी शक्ति पर, जो ऐसे विषयों में से किसी के बारे में आदेश देने के लिए मध्यस्थ या अधिनिर्णायक में विहित हो, प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली नहीं समझी जाएगी।"

6. ऊपर वर्णित उपबंध को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि धारा 41 के उपबंध सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को न्यायालय के समक्ष की सभी कार्यवाहियों में लागू करते हैं जिसके अन्तर्गत अधिनियम के अधीन की गई अपीलें भी सम्मिलित हैं। उसमें आगे यह वर्णित किया गया है कि न्यायालय को द्वितीय अनुसूची में उपवर्णित विषयों में से किसी के बारे में आदेश पारित करने की वही शक्ति होगी जो उसे न्यायालय के समक्ष की किन्हीं कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनके सम्बन्ध में हो। यह उपबंध पक्षकारों द्वारा मध्यस्थों को किसी प्रकार की शक्तियों के प्रदत्त किए जाने पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है। दूसरे शब्दों में यदि पक्षकार मध्यस्थ को ऐसी शक्तियां प्रदत्त करते हैं जो मध्यस्थ को द्वितीय अनुसूची में दी जानी अंतर्विष्ट हैं तो उसकी शक्तियां धारा 41(ख) द्वारा प्रभावित या कम नहीं की गई हैं। द्वितीय अनुसूची में न्यायालय की ऐसी शक्तियां वर्णित की गई हैं जो वह उस समय प्रयुक्त कर सकता है जब विवाद मध्यस्थ के समक्ष लंबित हो। इन शक्तियों में किसी माल का जो निर्देश की विषय-वस्तु हो, परिरक्षण, अन्तरिम अभिरक्षा, या विक्रय सम्मिलित है, जो निर्देश की विषय-वस्तु हैं। इन शक्तियों में निर्देश में विवादग्रस्त रकम सुनिश्चित करने के लिए उचित निदेश देना भी सम्मिलित है तथा साथ ही किसी संपत्ति के रोक रखने, परिरक्षण या निरीक्षण के लिए उपयुक्त निदेश देने की शक्ति भी सम्मिलित है और इसी प्रकार की अन्य शक्तियां भी सम्मिलित हैं जो नियम 3 में वर्णित हैं। नियम 4 न्यायालय को इस बात के लिए सशक्त करता है कि वह मध्यस्थ के

समक्ष कार्यवाहियों के लंबित रहते समय अन्तरिम व्यादेश जारी करें या रिसीवर की नियुक्ति करें। जबकि नियम 5 माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजनों के लिए किसी अप्राप्तवय या विकृतचित्त व्यक्ति के लिए संरक्षक की नियुक्ति करने के लिए सशक्त करता है।

7. मध्यस्थ के समक्ष की कार्यवाहियां माध्यस्थम् अधिनियम के उपबंधों द्वारा विनियमित हैं और मध्यस्थ की शक्तियां वहां वर्णित हैं। तथापि पक्षकारों को हमेशा ही इस बात की शक्ति होती है कि वे सहमति द्वारा या करार द्वारा मध्यस्थ को अधिक या अतिरिक्त शक्तियां प्रदत्त कर दे। मध्यस्थ पक्षकारों के बीच हुए करार के आधार पर विवाद का विनिश्चय करने की शक्ति प्राप्त करता है। अधिनियम में न्यायालय के मध्यक्षेप सहित या उसके बिना माध्यस्थम् का उपबंध है साथ ही उसमें यह भी उपबंध है कि अधिनिर्णय को न्यादेश बना दिया जाए और साथ ही अधिनिर्णय के उपबंधों के अनुसार डिक्री पारित किए जाने के लिए भी उस में उपबंध है। उसमें उपबंधित है कि प्रत्येक माध्यस्थम् करार के बारे में जब तक कि उसमें भिन्न आशय अभिव्यक्त न हो, यह समझा जाएगा कि अधिनियम की प्रथम अनुसूची में वर्णित उपबंध उसमें सम्मिलित हैं। पंचाट न्यायालय द्वारा उपांतरित किया जा सकता है या मध्यस्थ को पुन: विचार किए जाने के लिए भेजा जा सकता है। अधिनियम की धारा 30 के अधीन न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह पंचाट को अपास्त कर दे यदि पंचाट में विधि की स्पष्ट गलतियां हों या यदि वह अन्यथा अविधिमान्य हों। मध्यस्थ द्वारा दिया गया पंचाट अंतिम होता है और यदि वह पक्षकारों पर आबद्धकर होता है, तथा साथ ही वह उनके अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों पर भी अंतिम और आबद्धकर होता है। पक्षकारों को इस बात का अधिकार होता है और यह एक अच्छी बात होगी यदि पक्षकार ऐसे पंचाट को न्यादेश बनाए बिना ही स्वीकार कर लें। तथापि सामान्य रूप से पक्षकार न्यायालय में इस दृष्टि से आवेदन करते हैं जिससे कि वे पंचाट को न्यादेश बना दे ताकि न्यायालय के परिकरण के माध्यम से पंचाट का प्रवृत्त किया जाना संसूचित किया जा सके। यद्यपि विवादों का निपटारा करने के लिए मध्यस्थ एक वैकल्पिक फोरम है तथापि उसे स्वयमेव विधि द्वारा न्यायालयों को प्रदत्त सभी शक्तियों का प्रयोग करने या उन्हें रखने का स्वयमेव ही अधिकार नहीं है। फिर भी मध्यस्थ को विवाद का विनिश्चय करने की शक्ति होती है और उसकी शक्तियां माध्यस्थम् अधिनियम और देश की अधिष्ठायी विधि के उपबंधों द्वारा विनियमित की जाती हैं। जैसा पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि अधिनियम की धारा 3 में उपबंधित है कि जब तक कि माध्यस्थम् करार में भिन्न आशय अभिव्यक्त न हो, प्रथम अनुसूची में उपवर्णित उपबंध वहां तक माध्यस्थम करार के अंतर्गत समझे जाएंगे जहां तक वे निर्देश को लागू होते हैं। प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट बातें माध्यस्थम् करार की विवक्षित शर्तें मानी जाती हैं। प्रथम अनुसूची का नियम 8 मध्यस्थ को खर्चे सदत्त करने की शक्ति प्रदत्त करता है। अधिनियम की धारा 29 न्यायालय को यह शक्ति प्रदत्त करती है कि वह डिक्री की तारीख से मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत रकम पर ब्याज दिए जाने का आदेश कर सके। धारा 41 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के सभी उपबंध माध्यस्थम् कार्यवाहियों को लागू किए गए हैं। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 न्यायालय को ब्याज अधि-

निर्णीत करने की शक्ति प्रदत्त करती है। किंतु माध्यस्थम् अधिनियम मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की कोई अभिव्यक्त शक्ति प्रदत्त नहीं करता है। तथापि ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 3 और 4 के अधीन "न्यायालय" शब्द के अंतर्गत अधिनियम की धारा 2(क) के अर्थान्तर्गत अधिकरण या मध्यस्थ सम्मिलित है और वह ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त है। इन उपबंधों के संदर्भ में, यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या ऐसे मध्यस्थ को जिसे पक्षकारों द्वारा निर्देश किया गया हो, वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता या प्राधिकार होता है। यदि माध्यस्थम् करार या संविदा में ही यह उपबंध हो कि एक पक्षकार से दूसरे पक्षकार को शोध्य पाई गई रकम पर ब्याज अधिनिर्णीत किया जा सकता है तो इस संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है कि मध्यस्थ को ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता नहीं थी क्योंकि उस मामले में मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की भी शक्ति होती है। इसी प्रकार जहां करार में यह स्पष्ट रूप से उपबंधित है कि शोध्य रकम पर वादकालीन कोई ब्याज संदेय नहीं होगा, मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की कोई शक्ति नहीं होती। किंतु जहां करार में शोध्य पाई गई रकम पर ब्याज दिए जाने या न दिए जाने के संबंध में कोई उपबंध न हो, तब यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या ऐसी दशा में मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज मंजूर करने की शक्ति और प्राधिकार है।

8. सामान्य तौर पर मध्यस्थ द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत किए जाने का प्रश्न नीचे वर्णित 3 विभिन्न कालावधियों के संबंध में उद्भूत होता है अर्थात् (1) विवाद की तारीख से प्रारंभ होकर उस तारीख तक जब मध्यस्थ निर्देश पर कार्यवाहियां करना शुरू करता है। (2) उस कालावधि के लिए जो मध्यस्थ द्वारा निर्देश पर कार्यवाहियां करने की तारीख से प्रारंभ होती है और अधिनिर्णय किए जाने की तारीख तक बनी रहती है; और (3) अधिनिर्णय किए जाने की तारीख से प्रारंभ होकर उस तारीख तक बनी रहती है जब कि अधिनिर्णय न्यायादेश बनाया जाता है या उस तारीख तक बनी रहती है जब वसूली की जाती है, इन में से जो भी पूर्वतर हो। हमारे समक्ष की अपीलों में हमारा संबंध ऊपर वर्णित 3 कालावधियों में से केवल दूसरी स्थिति में वर्णित कालावधि से है। जैना वाले मामले में न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के लिए दो प्रश्न उठाए गए थे। अर्थात् (1) मध्यस्थ द्वारा निर्देश पर कार्यवाहियां करने से पहले की कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने की मध्यस्थ की शक्ति; और (2) मध्यस्थ द्वारा उस कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत किए जाने की शक्ति जब विवाद उसके समक्ष लंबित रहा हो। चूंकि न्यायालय ने दूसरे प्रश्न पर काफी विस्तार से विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की कोई अधिकारिता या प्राधिकार नहीं था, अतः हम उस विनिश्चय के लिए कारणों पर विचार करना आवश्यक समझते हैं। न्यायपीठ की ओर से निर्णय देते हुए न्या० चिनप्पा रेड्डी ने यह अभिनिर्धारित किया था कि न तो ब्याज अधिनियम, 1839 और न ब्याज अधिनियम, 1978 द्वारा मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति दी गई है। विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 जिसमें इस संबंध में उपबंध किया गया है, मध्यस्थ को लागू नहीं होती क्योंकि मध्यस्थ उक्त उपबंध के

अर्थान्तर्गत न्यायालय नहीं है। परिणामस्वरूप मध्यस्थ वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत नहीं कर सकता।

9. इस प्रतिपादना के लिए, विद्वान् न्यायाधीश ने थावरदास[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया। विद्वान् न्यायाधीश ने यह बतलाया कि थावरदास वाले मामले में "ब्याज के संदाय का प्रश्न मध्यस्थ को किए गए निर्देश की विषय-वस्तु नहीं था"। यद्यपि मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत किया गया ब्याज माध्यस्थम् के लिए निर्देश किए जाने से पहले की कालावधि से संबंधित था साथ ही वह माध्यस्थम् की कार्यवाहियों के लंबित रहने की कालावधि से भी संबंधित था। विद्वान् न्यायाधीश ने आगे यह भी बतलाया कि थावरदास वाले मामले में न्या०.बोस द्वारा व्यक्त किए गए मत के कारण पश्चात्वर्ती मामलों में काफी कठिनाई अनुभव की गई और उक्त मामलों में यह स्पष्ट किया गया कि उक्त मामले में ऐसी कोई व्यापक और विशिष्ठ प्रतिपादना अधिकथित करने का कोई आशय नहीं था जैसा कि ऊपरी तौर पर देखने पर ऐसा अधिकथित किया जाना प्रतीत होता है। विद्वान् न्यायाधीश ने बाद में विभिन्न विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया जिन में निम्नलिखित विनिश्चय सम्मिलित हैं। नचप्पा चेट्टियार[2] सतिंदर सिंह[3], मदन लाल[4], रोशन लाल[5], बंगो स्टील,[6] अशोक कंस्ट्रक्शन[7], और सेठ एंड स्केल्टन[8],। उक्त मामलों में मध्यस्थ की ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति वैध ठहराई गई थी और इस आधार पर स्पष्ट की गई थी कि वे सब "ऐसे मामले थे जिन में न्यायालय द्वारा वाद में के सभी विवादों के संबंध में माध्यस्थम् के लिए निर्देश किया गया था।" संबंधित संप्रेक्षणों को जहां तक वे सुसगत हैं, पुनः उद्धृत करना उपयुक्त होगा।

> "मध्यस्थ द्वारा ब्याज के प्रश्न पर शेष मामलों में विचार किया गया था जिनके प्रति हमने पहले निर्देश कर दिया है। नचप्पा चेट्टियार बनाम सुब्रमणियम चेट्टियार, सतिंदर सिंह बनाम उमराव सिंह फर्म मदन लाल रोशन लाल महाजन बनाम हुकुम चंद मिल्स, यूनियन आफ इंडिया बनाम बंगो स्टील फर्नीचर प्राइवेट लि०, अशोक कंस्ट्रक्शन कं० बनाम भारत संघ और मध्य प्रदेश राज्य बनाम मे० सेठ एंड स्केल्टन प्राइवेट लि० ऐसे मामले थे जिनमें न्यायालय द्वारा मध्यस्थ को वाद के सभी विवादों के बारे में निर्देश किया गया था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मध्यस्थ के बारे में इन परिस्थितियों में उसी शक्ति का अनुमान किया जाना चाहिए जो शक्ति ब्याज अधिनिर्णीत करने के संबंध में न्यायालय को प्राप्त होती है। उस आधार पर ही वादकालीन ब्याज के संबंध में अधिनिर्णय सिविल

---

[1] [1955] 2 एस० सी० आर० 48.
[2] [1960] 2 एस० सी० आर० 209.
[3] [1961] 3 एस० सी० आर० 676.
[4] [1967] 1 एस० सी० आर० 105.
[5] [1967] 1 एस० सी० आर० 324
[6] [1971] 3 एस० सी० आर० 66.
[7] [1971] 3 एस० सी० आर 233.

1991(12) eILR(PAT) SC 1

प्रक्रिया संहिता की धारा 34 में अन्तर्विष्ट सिद्धांत के आधार पर नचप्पा चेट्टियार बनाम सुब्रमणियम चेट्टियार, फर्म मदन लाल रोशन लाल महाजन बनाम हुकुम चंद मिल्स लि० भारत संघ बनाम बंगो स्टील फर्नीचर प्रा० लि० और मध्य प्रदेश राज्य बनाम मे० सेठ एण्ड स्केल्टन प्रा० लि० वाले मामलों में दिया गया था।"

10. चंद्रिस[1] के मामले के विनिश्चय सहित कतिपय इंगलिश विनिश्चय विद्वान् न्यायाधीशों की जानकारी में लाए गए थे। इसके अलावा हेल्सबरीज ला आफ इंग्लैंड और रसल्स आर्बीट्रेशन से भी कतिपय अंश माननीय न्यायाधीशों की जानकारी में लाए गए थे। तथापि विद्वान् न्यायाधीश ने उनके प्रति इस दृष्टि से कोई निर्देश नहीं किया क्योंकि इस न्यायालय के बहुत से प्राधिकृत निर्णय इस संबंध में थे। प्रत्यर्थी ने जैना वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के सही होने पर आक्षेप किया। अतः हमने मामूली नियम से विचलन करते हुए प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री मिलन बनर्जी की सुनवाई अपीलार्थी के काउन्सेल की सुनवाई करने से पहले की है। श्री बनर्जी ने प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होते हुए निम्नलिखित दलीलें दीं :

(1) मध्यस्थ की ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति माध्यस्थम् करार या निदेश के विवक्षित निबंधन के आधार पर होती है अर्थात् इस आधार पर कि मध्यस्थ को विधि के मामूली नियमों का अनुसरण करने का विवक्षित प्राधिकार होता है।

(2) प्रत्येक माध्यस्थम् करार में यह एक विवक्षित निबंधन होता है कि मध्यस्थ विवाद का विनिश्चय भारतीय विधि के अनुसार करेगा। यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 मध्यस्थों को अभिव्यक्त रूप से लागू नहीं होती है। किंतु उसमें अंतर्विष्ट सिद्धांत उसी प्रकार लागू होता है जैसाकि अन्य कई उपबंधों में अंतर्विष्ट सिद्धांत मध्यस्थों को लागू होने वाले ठहराए गए हैं (उदाहरणार्थ परिसीमा अधिनियम की धारा 3)। चूंकि मध्यस्थ विवादों का निपटारा करने के लिए वैकल्पिक फोरम है। अतः उसके संबंध में यह समझा जाना चाहिए कि उसे ऐसी सब शक्तियां प्राप्त हैं जो पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हैं। वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति ऐसी शक्ति है जो पक्षकारों के बीच में पूर्ण न्याय करने की दृष्टि से आवश्यक रूप से ही पर्याप्त समझी जानी चाहिए। सिद्धांत यह है कि यदि कोई व्यक्ति धन का उपयोग करने से वंचित किया गया है तो उस निमित्त उसकी प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए। संक्षेप में यह बात प्रतिपूर्ति या प्रत्यास्थापन जैसा इसे कहा जाए, के सिद्धांत पर आधारित है।

(3) प्रत्येक मामले में जहां माध्यस्थम् करार में वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की मध्यस्थ की अधिकारिता अपवर्जित नहीं की गई है, ऐसी शक्ति का अनुमान अवश्य ही किया जाना चाहिए।

(4) जैना वाले मामले में किए गए विनिश्चय में इस न्यायालय द्वारा

[1] 1951 (1) के० बो० 240.

1991(12) eILR(PAT) SC 1

विनिश्चित विभिन्न पूर्ववर्ती विनिश्चयों को ध्यान में नहीं रखा गया है जिनमें मध्यस्थ की वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति मान्य ठहराई गई है। ऐसे बहुत से विनिश्चय इस प्रकार के मामलों के आधार पर स्पष्ट किए गए हैं जहां माध्यस्थम् के लिए निर्देश किसी लंबित वाद में किया गया था। यद्यपि वास्तव में ऐसा नहीं है। सिद्धांत के आधार पर भी, उक्त विनिश्चय में सही विधिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है।

11. श्री सोली सोराबजी ने श्री मिलन बनर्जी द्वारा दी गई दलीलों का समर्थन करते हुए यह निवेदन किया कि इस संबंध में कोई अच्छा कारण नहीं है कि यह क्यों अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति नहीं है। विवादों का निपटारा करने के लिए मध्यस्थ एक वैकल्पिक फोरम है। मुख्य विचार न्यायालय जाने से बचना है। यदि यह बात है तो मध्यस्थ के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया ही जाना चाहिए कि पक्षकारों के बीच में पूर्ण न्याय करने के लिए उसे सभी आवश्यक शक्तियां प्राप्त होती हैं। यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की कोई शक्ति नहीं है तो ऐसे ब्याज का दावा करने वाले पक्षकार को ऐसे ब्याज के लिए सिविल न्यायालय जाना ही पड़ेगा भले ही अन्य दावों के संबंध में मध्यस्थ से उसकी पूर्ण तुष्टि हो गई हो। यह तरीका न तो माध्यस्थम् की विचारधारा के अनुकूल है और न ही कार्यवाहियों की बहुलता से बचने के नियम की वृद्धि करने वाला है। बहरहाल ब्याज, वंचन के लिए प्रतिपूर्ति के लिए दूसरे नाम के अलावा और कुछ नहीं है। यह प्रत्यास्थापन के सिद्धांत पर आधारित है। उसने आगे यह निवेदन किया कि बहुत से मामलों में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि कोई विशिष्ट उपबंध किसी विशिष्ट परिस्थिति में लागू नहीं होता है। किंतु फिर भी उस उपबंध का सिद्धांत लागू होता है। यह तरीका इस बात को सुनिश्चित करने के लिए अपनाया गया है जिससे कि न्याय की विजय हो सके। इसी सादृश्यता के आधार पर यह भी अभिनिर्धारित करना ही होगा कि यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 मध्यस्थों को लागू नहीं होती है फिर भी उसमें अंतर्विष्ट सिद्धांत लागू होता है। श्री आर० के० गर्ग ने भी इसी प्रकार की दलीलें दी हैं।

12. इसके विपरीत उड़ीसा राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री सांघी ने यह दलील दी है कि कामन ला में ब्याज अधिकार की बात कभी भी नहीं मानी गई थी। यह न तो करार की विषयवस्तु है और न ही कानूनों द्वारा सृजित अधिकार है। निःसंदेह ब्याज साम्या के आधार पर अधिनिर्णीत किया जा सकता है किंतु ऐसा बहुत सीमित वर्ग के मामलों तक ही सीमित है जिनके प्रति प्रिवी कौंसिल ने बंगाल नागपुर रेलवे कं० लि० बनाम रतन जी राम जी और अन्य[1] वाले विनिश्चय में निर्देश किया है। यह सिद्धांत ही वास्तव में सेठ थावरदास फेरुमल बनाम भारत संघ[2] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का आधार रहा है। विद्वान् काउन्सेल के मतानुसार माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 3, 17 और 41 को पढ़ने से यह बात साबित होती है कि मध्यस्थ को

[1] 65 आई० ए० 66.

[2] 1955 (2) एस० सी० आर० 48.

1991(12) eILR(PAT) SC 1

ऐसी शक्ति से वंचित किया गया है। यदि यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि मध्यस्थ को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 में अन्तर्विष्ट सिद्धांत के आधार पर वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति है तो वह धारा 34 का उपयोग करता है जब कि उक्त धारा लागू नहीं होती है और इससे ब्याज से संबंधित विभिन्न मामलों में नए विवाद उठ जाने की गुंजाइश उत्पन्न हो जाएगी। इसके आधार पर यह निवेदन किया जा सकेगा कि सिविल न्यायालय की सभी शक्तियों के बारे में यह अनुमान लगाया जाना चाहिए कि वे मध्यस्थ को भी उपलब्ध हैं और साथ ही इसी प्रकार सादृश्यता की वृद्धि (न्यायालयों के मामलों में भी) की जा सकती है। यह कार्य वास्तव में इस न्यायालय द्वारा विधायन के कार्य की कोटि का होगा जिस कार्य को करने से इस न्यायालय को विरत रहना चाहिए।

13. जिस प्रश्न को हमें तय करना है, उस पर भारतीय और इंग्लिश न्यायालयों ने विस्तार से विचार किया है। इंग्लिश न्यायालयों के विनिश्चयों का भारतीय न्यायालयों ने अनुसरण किया है। अत: कुछ इंग्लिश विनिश्चयों के प्रति निर्देश करना इस दृष्टि से आवश्यक है जिससे यह ज्ञात हो सके कि इंग्लैंड में न्यायालयों ने इसका समाधान कैसे निकाला। एडवर्ड्स बनाम दि ग्रेट वैस्टर्न रेलवे कंपनी[1] वाले मामले में न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उठाया गया था कि "क्या मध्यस्थ उस रकम पर ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त है जो रकम उसने अधिनिर्णीत की है, यदि वह ऐसा करना उपयुक्त समझता है। वादी का पक्षकथन यह था कि वह ऐसे ब्याज के लिए हकदार था जब कि प्रतिवादी कंपनी ने मध्यस्थ की शक्ति पर विवाद किया। कंपनी का पक्षकथन यह था कि यहां तक कि कार्रवाई की सूचना में ब्याज की मांग नहीं की गई थी। अत: वादी ब्याज का दावा करने के लिए हकदार नहीं था। मु० न्या० जर्विस ने उक्त दलील को स्वीकार नहीं किया और यह मत व्यक्त किया—

> "इसके दो उत्तर हैं : पहला यह कि कार्यवाही की सूचना के अभाव की कोई दलील नहीं दी गई किंतु "कानून के द्वारा" कभी भी ऋणी न होने की ही दलील दी गई थी, जिसका प्रभाव सर एफ० पोलक्स ऐक्ट, 5 और 6 विक्टोरिया सी 97 एस० 3 द्वारा परिवर्तित किया गया है। अत: प्रतिवादियों को ऐसी साधारण दलील का अवलंब लेने का कोई अधिकार नहीं था। वे कार्रवाई की सूचना के अभाव की विशेष रूप से दलील देने के लिए बाध्य हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर यह होगा कि यह दलील न केवल कार्यवाही की है किंतु उन सभी मामलों की बाबत है जो विवादग्रस्त हैं और ब्याज विवादग्रस्त विषयों में से एक होगा चाहे कार्यवाही की सूचना में उसकी मांग की गई हो या नहीं। यदि मध्यस्थ ब्याज दे सकता था तो वह इस रीति में ब्याज दे देता, भले ही सूचना में ब्याज का दावा न किया गया हो।"

14. इस बात पर ध्यान देना सुसंगत है कि न्यायालय ने यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि जहां धन का दावा मध्यस्थ को निर्देशित कर दिया जाता है तो ऐसे दावे

[1] (1851) 138 इंग्लिश रिपोर्ट्स 603.

में ब्याज का दावा भी सम्मिलित होगा। यह बात इसी प्रकार से पश्चात्‌वर्ती विनिश्चयों में समझी गई है जिसके संबंध में हम आगे उल्लेख करेंगे।

15. **पोडार ट्रेडिंग कं० लि० बनाम फ्रेंकोइस थागेर**[1] वाले मामले में विवाद यह था कि क्या मध्यस्थ को अधिनिर्णय देने के पश्चात् की कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति थी। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सिविल प्रोसीजर ऐक्ट, 1833 के पहले ब्याज केवल 3 मामलों में ही अधिनिर्णीत किया जा सकता था अर्थात जहां कानून द्वारा या करार द्वारा या किसी वाणिज्यिक रूढ़ि द्वारा उसके लिए उपबंध किया गया हो और किसी अन्य परिस्थिति में ऐसा नहीं किया जा सकता था। तथापि उक्त अधिनियमिति के पश्चात् विनिश्चय के अनुसार स्थिति यह थी कि न्यायालय और मध्यस्थ के बीच कोई अंतर नहीं था। उसके मतानुसार, यह प्रतिपादना एडवर्ड्स वाले मामले के विनिश्चय से प्रारम्भ हुई थी। उसने यह उल्लेख किया कि माध्यस्थम् अधिनियम, 1934 की धारा 11 में विनिर्दिष्ट रूप से न्यायालय को अधिनिर्णय की तारीख से ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त किया गया है और साथ ही सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 28 और 29 कतिपय अन्य विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में ऐसे ब्याज को अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त करती हैं। दूसरे शब्दों में, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ब्याज अधिनिर्णीत करने के मामले में मध्यस्थ को वही शक्ति प्राप्त है जो न्यायालय को प्राप्त है। इसके पश्चात् उसने ला रिफोर्म्स (मिसलेनियस प्राविजंस) अधिनियम, 1934 के प्रभाव पर ध्यान दिया और यह मत व्यक्त किया कि उक्त अधिनियम की धारा 3(1) कार्यवाही के हेतुक की तारीख से निर्णय की तारीख तक के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने हेतु केवल न्यायालय को सशक्त करती है। उसने आगे इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि इस अधिनियम की धारा 3(2) के द्वारा सिविल प्रोसीजर ऐक्ट, 1833 की धारा 28 और 29 निरसित कर दी गई हैं। इस निरसन के प्रभाव स्वरूप न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थ को ब्याज अधिनिर्णीत करने की कोई शक्ति नहीं होती है। न्यायालय ने यह कहा कि यह बात किसी लोप (चूक) के द्वारा हो सकती है किंतु इसका सुधार करने का काम विधायिका का है और न्यायालय का यह काम नहीं है कि वह इस कमी को पूरा करे।

16. **चंद्रिस** बनाम **इसब्रांडसेन मोलर कंपनी इनकारपोरेटिड**[2] वाले मामले में मध्यस्थ ने समय के प्रति कोई विनिर्देश किए बिना ब्याज अधिनिर्णीत कर दिया। अपील न्यायालय के समक्ष के प्रश्नों में से एक प्रश्न यह था कि क्या उसे ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति थी। पहली बार मामला न्या० डेलविन के समक्ष रखा गया। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पोडार ट्रेडिंग वाले विनिश्चय का अनुसरण करते हुए मध्यस्थ को ऐसी कोई शक्ति नहीं थी। इसके पश्चात् इस मामले में कोर्ट आफ अपील्स के समक्ष अपील की गई। लार्ड टकर ने महत्वपूर्ण निर्णय दिया। उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि पोडार ट्रेडिंग वाले मामला गलत विनिश्चित किया गया था और पोडार ट्रेडिंग वाले

---

[1] 1949 (2) आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 62.

[2] 1951 (1) किंग्स बैंच डिवीजन 240.

मामले में उच्च न्यायालय ने यह अनुमान करके गलती की थी कि एडवर्ड्स वाले मामले का विनिश्चय सिविल प्रोसीजर ऐक्ट, 1833 पर आधारित था। एडवर्ड्स वाले मामले का विनिश्चयाधार यह है कि याचना किए जाने पर ही मध्यस्थ को ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति प्राप्त होती है और मध्यस्थ की शक्ति, 1833 के अधिनियम से प्राप्त नहीं थी। लार्ड टकर ने आगे यह मत व्यक्त किया--

> "किंतु मैं श्री मोकट्टा से इस संबंध में सहमत हूं कि एडवर्ड्स **बनाम** ग्रेट वेस्टर्न रेलवे (64) वाले मामले का वास्तविक आधार यह नहीं था कि मध्यस्थ को उसकी शक्तियां 1833 के अधिनियम द्वारा प्राप्त हुई थीं। किंतु यह कि उसे वे शक्तियां याचना किए जाने के परिणामस्वरूप प्राप्त हुई थीं जिनके द्वारा आवश्यक रूप से ही उसे विवक्षित शक्तियां प्राप्त हो गई थीं जैसा कि लार्ड साल्वेसेन ने निर्देश किया है। किंतु मुझे इस संबंध में कोई कारण ज्ञात नहीं होता है कि 1934 के अधिनियम के पश्चात् से मध्यस्थ के संबंध में विवक्षित रूप से यह नहीं समझा जाना चाहिए कि उसे वैसी ही शक्तियां प्राप्त हैं। अतः बड़े संकोच के साथ और इस संबंध में खंड न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त किए गए मत को ध्यान में रखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि ऐसे मामले में जैसा कि प्रस्तुत मामला है, मध्यस्थ को ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति है। तदनुसार, उस विस्तार तक, मेरा विचार है कि यह अपील सफल होनी चाहिए और पोडार ट्रेडिंग कं० लि० बाम्बे **बनाम** फ्रेंकोइस टेगर, बारसेलोना) 65 वाली अपील इस मुद्दे पर उलट दी जाती है।"

17. न्या० कोहेन ने सहमति मत व्यक्त करते हुए यह संप्रेषण किया कि लार्ड रिफार्म्स (मिसलेनियस प्राविजंस) ऐक्ट, 1934 से वास्तव में कोई परिवर्तन अस्तित्व में नहीं आया। उसमें जो कुछ कहा गया था, वह जूरी के स्थान पर न्यायालय को प्रतिस्थापित करना था। चूंकि उस समय तक क्षतिपूर्ति मामूली तौर पर एकल न्यायाधीश द्वारा अधिनिर्णीत की जाती थी अर्थात् उसमें जूरी नहीं होते थे। स्मिथ एल० जे० ने एक पृथक् सहमति विनिश्चय सुनाते हुए यह मत अभिव्यक्त किया कि एडवर्ड्स वाले विनिश्चय में यह उपधारणा की गई थी कि मध्यस्थ को ब्याज अधिनिर्णीत करने के मामले में वैसी ही शक्तियां प्राप्त हैं, जैसी न्यायालयों को हैं। उक्त उपधारणा समय के प्रभाव में प्रभारित नहीं हुई है और उक्त उपधारणा को त्यागने के लिए कोई अच्छा कारण भी नहीं है।

18. थावरदास वाले मामले में विवाद मध्यस्थ के निर्देश पर कार्यवाही करने से पहले की कालावधि के लिए और उसके समक्ष निर्देश के लंबित रहने के पहले की कालावधि के लिए अर्थात् दोनों कालावधियों के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति से संबंधित था। ठेकेदार ने ब्याज का दावा किया था और मध्यस्थ ने 6 प्रतिशत की दर से ऐसा ब्याज अधिनिर्णीत किया था जिस पर न्यायालय के समक्ष आक्षेप किया गया है। सबसे पहले न्यायालय ने निर्देश पर कार्यवाही करने से पहले की कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने की मध्यस्थ की शक्ति की परीक्षा की और यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा ब्याज अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता क्योंकि ब्याज अधिनियम, 1839 की धारा।

की अपेक्षाएं मामले में पूरी नहीं की गई थीं। चूंकि ब्याज अधिनियम की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं हुई थी अतः न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थ को ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति नहीं थी क्योंकि उसने ऐसा करना उचित समझा। इसके पश्चात् ठेकेदार की ओर से यह दलील दी गई कि कम से कम मध्यस्थ के समक्ष विवाद के लंबित रहने की कालावधि के लिए वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 के सादृश्य पर ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता है। इस दलील का भी खंडन यह अभिनिर्धारित करते हुए कर दिया गया था कि धारा 34 मध्यस्थ को लागू नहीं होती है क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता के अर्थान्तर्गत वह न्यायालय नहीं है और न ही उसके समक्ष कार्यवाहियों को सिविल प्रक्रिया संहिता लागू होती है। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यदि धारा 34 नहीं होती, न्यायालय को भी उसके समक्ष वाद के लंबित रहने की कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति पश्चात्वर्ती कालावधि के लिए प्राप्त नहीं हो सकती थी। सुसंगत पैराग्राफ को उद्धृत करना उपयुक्त होगा —

> "यह सुझाव दिया गया कि कम से कम वाद की तारीख से ब्याज सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 के सादृश्य पर अधिनिर्णीत किया जा सकता है। किंतु धारा 34 लागू नहीं होती है क्योंकि संहिता के अर्थान्तर्गत मध्यस्थ "न्यायालय" नहीं है और न ही उक्त संहिता मध्यस्थों को लागू होती है। यदि धारा 34 नहीं होती तो न्यायालय को भी वाद के पश्चात् ब्याज देने की शक्ति नहीं होती। अतः यह बात को अधिनिर्णय में से ठीक ही निकाल दिया गया था।"

19. **नेचिप्पा चेट्टियार और अन्य** बनाम **सुब्रमणियम चेट्टियार**[1] वाले मामले में एक वाद में लंबित विवाद मध्यस्थों को निर्देशित किया गया था और उन्होंने तीनों कालावधियों के लिए अर्थात् निर्देश से पहले, वादकालीन तथा अधिनिर्णय के पश्चात् की कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत किया था। थावरदास वाले मामले के विनिश्चय को देखते हुए अधिनिर्णय पर आक्षेप किया गया था किंतु न्या० गजेन्द्र गडकर ने उक्त आक्षेप को नीचे लिखे शब्दों में उलट दिया था —

> "उक्त दलील न्या० बोस द्वारा व्यक्त किए गए संप्रेक्षण पर ही आधारित है। न्या० बोस ने सेठ थावरदास फेरूमल **बनाम** भारत संघ वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस मामले में मध्यस्थों ने जिस दावे का अधिनिर्णय किया था, वह अपरिनिर्धारित राशि के लिए था जिसे 1839 का ब्याज अधिनियम लागू होता था।"

चूंकि उस प्रकार के मामले में विधि के अनुसार अन्यथा ब्याज संदेय नहीं था। इस दलील के संबंध में कार्रवाई करते हुए कि मध्यस्थों को ऐसे मामले में ब्याज अधिनिर्णीत नहीं करना चाहिए था, न्या० बोस ने 4 शर्तें वर्णित कीं जिनका ब्याज अधिनियम के अधीन ब्याज अधिनिर्णीत करने के पहले समाधान हो ही जाना चाहिए और यह मत व्यक्त किया कि उस मामले में ऐसी कोई बात मौजूद नहीं थी। अतः उसने यह निष्कर्ष निकाला कि

---

1 1960 (2) एस० सी० आर० 209.

1991(12) eILR(PAT) SC 1

मध्यस्थ को ब्याज मंजूर करने की कोई शक्ति केवल इस कारण नहीं थी क्योंकि उसने यह अनुभव किया था कि संदाय युक्तियुक्त नहीं था। इस न्यायालय के समक्ष जो आनुकल्पिक दलील दी गई है, वह यह है कि ब्याज सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 के अधीन अधिनिर्णीत किया जा सकता है। किन्तु इस दलील का भी इस प्रकार खंडन कर दिया गया कि संहिता के अर्थान्तर्गत "मध्यस्थ", "न्यायालय" के अन्तर्गत नहीं आता है और न ही संहिता मध्यस्थों को लागू होती है। श्री विश्वनाथ शास्त्री ने उन मतों का अवलंब लिया और यह दलील दी कि किसी भी दशा में मध्यस्थ ब्याज अधिनिर्णीत नहीं कर सकते। इस संबंध में संदेह की गुंजाइश है कि क्या वे संप्रेक्षण जिनका श्री विश्वनाथ शास्त्री अवलंब लेते हैं, आशय ऐसी व्यापक और अविशेषित प्रतिस्थापना अधिकथित करने का था। तथापि हम इस मामले में और आगे कार्यवाही करना प्रस्तावित नहीं करते हैं क्योंकि प्रस्तुत दलील उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं दी गई थी। निस्संदेह उसे अपील का एक आधार बनाया गया था किंतु निर्णय से यह स्पष्ट है कि सुनवाई के समय उस पर जोर नहीं दिया गया था। इन परिस्थितियों में, हम यह नहीं समझते कि इस मुद्दे को हमारे समक्ष उठाने की इजाजत देना हमारे लिए न्यायसंगत होगा।

20. यह सच है कि इन दलीलों को इस आधार पर देने की इजाजत नहीं दी गई थी कि वे दलीलें उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं दी गई थीं। तथापि इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि न्यायालय ने इस संबंध में संदेह व्यक्त किया था कि क्या श्री विश्वास नाथ शास्त्री ने थावरदास वाले मामले में व्यक्त किए गए संप्रेक्षणों के प्रति जो निर्देश किया, उनका आशय ऐसी कोई व्यापक अविशेषित प्रतिपादना अधिकथित करना था जिसके संबंध में हमारे समक्ष दलील दी गई थी।

21. **सतिन्दर सिंह और अन्य** बनाम **अमराव सिंह और अन्य**[1] वाला मामला माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन का मामला नहीं था। उक्त मामला ईस्ट पंजाब एक्वीजीशन एंड रिक्वीजीशन आफ इममूविबल प्रापर्टी (स्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1948 के अधीन उद्भूत हुआ था। हम इस मामले पर विचार करेंगे क्योंकि नेचिअप्पा और अन्य मामलों के साथ जैना वाले मामले में भी उसके प्रति निर्देश किया गया था। अतः हम इसके पश्चात् विचार किए गए मामलों के प्रति निर्देश करेंगे। सुसंगत तथ्य इस प्रकार थे कि कतिपय भूमि उक्त अधिनियम के उपबंधो के अधीन अर्जित की गई थी और प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया था। किंतु प्रतिकर पर कोई ब्याज इस आधार पर अधिनिर्णीत नहीं किया गया था कि अधिनियम में ब्याज के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय ने जब भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 23(1) के उपबंधों को लागू होने वाला बनाया, यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 5(ई) को ध्यान में रखते हुए प्रतिकर की रकम पर कोई ब्याज संदेय नहीं था किंतु उसने भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 28 और 34 के उपबंधों को लागू नहीं किया जिससे आवश्यक रूप से ही यह अनुमान निकाला जा सकता है कि वह ब्याज मंजूर किए जाने का उपबंध करने के लिए आधार नहीं था। यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क को स्वीकार नहीं

[1] 1961 (3) एस० सी० आर० 676,

करता है और इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 23(1) के अधीन आवेदन का आवश्यक रूप से ही तात्पर्य धारा 23 और 34 का अपवर्जन करना नहीं था। इसके पश्चात् उसने सिद्धांत के आधार पर प्रश्न का निरीक्षण किया और ऐसा उसने इस उपधारणा के आधार पर किया कि ब्याज अधिनिर्णीत करना उक्त अधिनियमिति के उपबंधों द्वारा अपवर्जित नहीं किया गया था। न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया –

> "दावेदारों ने तब कौन सी दलील दी ? उन्होंने यह प्रतिवाद किया कि उनकी स्थावर संपत्ति राज्य ने अर्जित कर ली है और राज्य ने उसका कब्जा ले लिया है। इस प्रकार हम उस संपत्ति से आय प्राप्त करने का अधिकार खो चुके हैं और राज्य द्वारा कब्जा लेने और दावेदारों को मुआवजे का संदाय करने के बीच समय का अन्तराल है। इस कालावधि के दौरान वे संपत्ति की आय से वंचित किए गए हैं और वे प्रतिकर की रकम से ब्याज प्राप्त नहीं कर सके हैं। मोटे तौर पर कहा जाए तो साधारण तौर पर स्थावर सपत्ति का कब्जा लेने के कार्य से संपत्ति के मूल्य पर ब्याज का संदाय करने का करार विवक्षित होता है और इस सिद्धांत के आधार पर ही राज्य के विरुद्ध ब्याज के लिए दावा किया जाता है। इस प्रश्न पर विभिन्न अवसरों पर विचार किया गया है और दावेदारों ने जो दलील दी है, वह साधारण सिद्धांत के आधार पर मान्य ठहराई गई है। स्विपट एंड कंपनी **बनाम** बोर्ड आफ ट्रेड वाले मामले में हाउस आफ लाड्स ने यह मत व्यक्त किया है कि "भूमि के क्रय और विक्रय की संविदा के लिए कोर्ट आफ चांसरी की यह परिपाटी है कि वह क्रेता को उस तारीख से जब वह भूमि का कब्जा ले या भूमि का कब्जा निरापद रूप से उसने ले लिया हो, क्रय धन पर ब्याज का संदाय करे।"

22. न्यायालय ने तब **स्विपट एंड कं०** बनाम **बोर्ड आफ ट्रेड**[1] वाले मामले में हाउस आफ लार्ड्स के विनिश्चय के प्रति निर्देश किए तथा साथ ही **इंगलवुड पल्प एंड पेपर कं० लि०** बनाम **न्यू ब्रन्स विक इलैक्ट्रीकल पावर कमीशन**[2] वाले मामले में प्रिवी काउंसिल के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया और यह मत व्यक्त किया—

> "इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि ब्याज का दावा इस उपधारणा पर आधारित है कि जब स्थावर संपत्ति का स्वामी उसका कब्जा खो देता है, तब वह कब्जा धारित रखने के स्थान पर ब्याज का दावा करने के लिए हकदार बन जाता है। वह प्रश्न जिस पर हमें विचार करना है, यह है कि क्या इस नियम का लागू होना 1948 के अधिनियम द्वारा अपवर्जित किया जाना आशयित था और जैसा कि हमने पहले ही वर्णित कर दिया है, मात्र यह तथ्य कि अधिनियम की धारा 5 (3) भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 23 (1) को लागू बनाती है, अतः हम युक्तियुक्त रूप से यह अनुमान नहीं कर सकते कि अधिनियम का आशय ब्याज का संदाय करने के मामले में इस साधारण नियम के लागू होने को अपवर्जित

1 1925 ए० सी० 520.

2 1928 ए० सी० 492.

करने का है।"

23. **धर्म मदन लाल रोशन लाल महाजन** बनाम **हुकुम चंद मिल्स लि०**[1] वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय इस प्रकार का मामला है जहां एक वाद में लंबित विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया गया था। उस वाद में वादी ने विनिर्दिष्ट रूप से ब्याज का दावा किया था। मध्यस्थ ने ब्याज अधिनिर्णीत कर दिया था और जब उस पर आक्षेप किया गया तब वह इस आधार पर कायम रखा गया कि चूंकि वाद में ब्याज का दावा किया गया था, अतः यह उपधारणा की ही जानी चाहिए कि पक्षकारों के बीच वाद में के सभी विवादास्पद मुद्दे जिसमें ब्याज भी सम्मिलित था, मध्यस्थ को निर्देशित किए गए थे। अपीलार्थी ने ब्याज अधिनिर्णीत किए जाने पर आक्षेप किया था, तथापि उसने थावरदास वाले पूर्व उद्धृत मामले में व्यक्त किए गए मत का अवलंब लिया। इस न्यायालय ने (न्या० के० एन० वांचू, न्या० जे० सी० शाह और न्या० आर० एस० बछावत) ने निम्नलिखित शब्दों में ऊपर लिखे मत पर अपने विचार व्यक्त किए —

> "संदर्भ से विच्छिन्न इन संप्रेक्षणों से इस दलील को समर्थन मिलता है कि मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की कोई शक्ति नहीं है। किंतु पश्चात्वर्ती मामलों में इस न्यायालय ने यह बतलाया है कि सेठ थावरदास वाले मामले में व्यक्त किए गए संप्रेक्षणों का आशय ऐसी किसी व्यापक और अविशेषित प्रतिपादना अधिकथित करने का नहीं था। सेठ थावरदास वाले मामले में ब्याज का दावा करने से संबंधित सुसंगत तथ्य पटना उच्च न्यायालय के निर्णय की रिपोर्ट के पृ० 64 से 66 और पैराग्राफ 2, 17 और 24 में पाए जाएंगे जो भारत संघ **बनाम** प्रेम चंद सतराम दास वाले मामले में रिपोर्ट किए गए हैं। मध्यस्थ ने माध्यस्थम के लिए निर्देश किए जाने की कालावधि के पहले तथा साथ ही निर्देश किए जाने की कालावधि के लिए भी अपरिनिर्धारित नुकसानी पर ब्याज अधिनिर्णीत किया था। उच्च न्यायालय ने ब्याज के संबंध में अधिनिर्णय को इस आधार पर अपास्त कर दिया था कि ब्याज के लिए दावा माध्यस्थम् के लिए निर्देशित नहीं किया गया था और मध्यस्थ को दावा ग्रहण करने की कोई अधिकारिता नहीं थी। इस न्यायालय में दावेदार के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि ब्याज अधिनियम, 1839 के अधीन मध्यस्थ को ब्याज अधिनिर्णीत करने की कानूनी शक्ति थी और किसी भी दशा में उसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति थी। न्या० बोस ने यह दलील नामंजूर कर दी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि सेठ थावरदास वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय में इस प्रश्न पर कोई विचार व्यक्त नहीं किया गया है कि क्या माध्यस्थम् कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान मध्यस्थ ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता है यदि ब्याज की बाबत दावा माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाता है। प्रस्तुत मामले में वाद में के सभी विवाद मध्यस्थ को विनिश्चित करने के लिए निर्देशित किए गए थे। वाद में के कई विवादों में से एक विवाद यह था

[1] 1967 (1) एस० सी० आर० 105.

1991(12) eILR(PAT) S

कि क्या प्रत्यर्थी वादकालीन ब्याज के लिए हकदार था। मध्यस्थ विवाद का विनिश्चय कर सकता था और वह न्यायालय के तौर पर वादकालीन ब्याज उसी प्रकार अधिनिर्णीत कर सकता था जैसा कि कोई न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 के अधीन कर सकता था। यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 वस्तुत: माध्यस्थम् को लागू नहीं होती है किंतु वाद में निर्देशों की यह विवक्षित शर्त थी कि मध्यस्थ विधि के अनुसार विवाद का विनिश्चय कर सकेगा और वादकालीन ब्याज की बाबत ऐसा अनुतोष मंजूर कर सकेगा जैसा कि न्यायालय कर सकता था यदि वह विवाद का विनिश्चय करता। मध्यस्थ की यह शक्ति न तो माध्यस्थम् करार और न ही माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 द्वारा सीमित है। यह दलील कि वाद में माध्यस्थम् की कार्यवाही में मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति नहीं थी, रद्द की ही जानी चाहिए।"

24. एक लंबित वाद में मध्यस्थ को निर्देश किए जाने के संदर्भ में ही नि:संदेह ऊपर वर्णित मत व्यक्त किए गए थे। उक्त मामले में विवादास्पद मुद्दों में से एक मुद्दा वादी के ब्याज के दावे से संबंधित था। महत्वपूर्ण बात वह आधार है जिस पर थावरदास वाला विनिश्चय स्पष्ट और प्रभेदित किया गया था। वास्तव में विद्वान् न्यायाधीशों ने उच्च न्यायालय के अभिलेख की जांच सही प्ररूपिक स्थिति सुनिश्चित करने के लिए की थी।

25. अगला विनिश्चय **भारत संघ** बनाम **बंगो स्टील फर्नीचर प्रा० लि०**[1] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय है। इस मामले में मध्यस्थ को किया गया निर्देश लंबित वाद से अन्यथा स्थिति में किया गया था। तथापि विवाद अधिनिर्णय किए जाने के पश्चात् की कालावधि के लिए ब्याज से संबंधित था, अर्थात् अधिनिर्णय की तारीख से आगे के लिए ब्याज से संबंधित था। मध्यस्थ ने ऐसा ब्याज अधिनिर्णीत किया था जिस पर थावरदास वाले मामले के इस न्यायालय के विनिश्चय के आधारों पर आक्षेप किया गया था। किंतु उक्त आक्षेप न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था। तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की ओर से निर्णय देते हुए न्या० रामस्वामी ने यह मत व्यक्त किया—

"इस उद्धरण से अपीलार्थी की इस दलील का समर्थन होता है कि अधिनिर्णय की तारीख के पश्चात् मध्यस्थ ब्याज अधिनिर्णीत नहीं कर सकता किंतु पश्चात्वर्ती मामलों में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि सेठ थावरदास फेरुमल **बनाम** भारत संघ वाले मामले में न्या० बोस द्वारा व्यक्त किए गए मतों का आशय ऐसी किसी व्यापक और अविशेषित प्रतिपादना को अधिकथित करने का नहीं था सेठ थावरदास फेरुमल **बनाम** भारत संघ वाले मामले में तात्विक तथ्य इस प्रकार थे कि मध्यस्थ ने माध्यस्थम् के लिए निर्देश किए जाने की कालावधि के लिए अपरिनिर्धारित नुकसानी पर ब्याज अधिनिर्णीत किया था साथ ही उसने निर्देश के पश्चात् की कालावधि के लिए भी ब्याज अधिनिर्णीत किया था। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर ब्याज से संबंधित अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया कि ब्याज का दावा माध्यस्थम् के लिए निर्देशित नहीं किया गया था और

[1] 1967 (1) एस० सी० आर० 325.

मध्यस्थ को दावा ग्रहण करने की कोई अधिकारिता नहीं थी। इस न्यायालय में अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि मध्यस्थ को ब्याज अधिनियम 1839 के अधीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की कानूनी शक्ति थी और किसी भी दशा में, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान उसे ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति थी। न्या० बोस ने यह दलील रद्द कर दी। किंतु यह ध्यान देने योग्य बात है कि सेठ थावरदास वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय में इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया है कि क्या मध्यस्थ अधिनिर्णय पारित करने के पश्चात् ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता है, यदि ब्याज की बाबत दावा माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया गया हो। प्रस्तुत मामले में वाद के सभी विवाद जिसमें ब्याज का प्रश्न भी सम्मिलित है मध्यस्थ को विनिश्चय करने के लिए निर्देशित किए गए थे। हमारे मतानुसार, प्रस्तुत मामले में मध्यस्थ को अधिनिर्णय की तारीख से न्या० मलिक द्वारा मंजूर की गई डिक्री की तारीख तक अधिनिर्णय की राशि पर ब्याज मंजूर करने की अधिकारिता थी इसका कारण यह है कि निर्देश की यह एक विवक्षित शर्त होती है कि मध्यस्थ विद्यमान विधि के अनुसार विवाद का विनिश्चय करेगा और ब्याज की बाबत ऐसा अनुतोष देगा जैसा अनुतोष यदि न्यायालय विवाद विनिश्चय करता तो वह दे सकता था। यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 तत्वतः माध्यस्थम् कार्यवाहियों को लागू नहीं होती है किंतु उस धारा में अंतर्विष्ट सिद्धांत मध्यस्थ द्वारा ऐसे मामलों में ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए लागू किया जाएगा जहां धारा 34 के अधीन आने वाली विषय-वस्तु के संबंध में अधिकारिता रखने वाला कोई न्यायालय किसी वाद में ब्याज के लिए डिक्री मंजूर कर सकता है। एडवर्ड्स **बनाम** ग्रेट वैस्टर्न रेलवे वाले मामले में विवाद्य प्रश्नों में से एक प्रश्न यह था कि क्या मध्यस्थ ऐसे मामले में जो सिविल प्रक्रिया अधिनियम, 1833 की धारा 28 के अधीन हो; मध्यस्थ ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता था या नहीं। कोर्ट आफ कामन प्लीज ने यह अभिनिर्धारित किया था कि "विवादग्रस्त सभी मामले" जो मध्यस्थ के समक्ष पेश किए जाएं, मध्यस्थ उनमें वादी को ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता है भले ही कार्यवाही की सूचना में ब्याज की मांग न की गई हो और इसके अतिरिक्त यह मान लेने पर कि कार्यवाही की सूचना आवश्यक थी, ऐसी सूचना के अभाव या अपर्याप्तता का फायदा नहीं उठाया जा सकता जब कि उसके निर्णय के दौरान इस संबंध में विशेष रूप से अभिवचन किया गया हो, ऐसा 5 और 6 विक्टोरिया सी० 97 धारा 3 से है। मु० न्या० जार्विस ने यह मत व्यक्त किया—

"इसके अतिरिक्त उत्तर यह हो सकता है कि यह दलील न केवल कार्यवाही की बाबत है किंतु विवादग्रस्त सभी मामलों की बाबत है और ब्याज विवाद की विषय-वस्तु होगा चाहे उसकी मांग कार्यवाही की सूचना द्वारा की गई हो या न की गई हो। यदि मध्यस्थ वह दे सकता था तो वह उस तरीके से दे सकता था चाहे सूचना में ब्याज का दावा भले ही न किया गया हो।"

1991(12) eILR(PAT) SC 1

इससे यह बात स्पष्ट रूप से विनिश्चित होती है कि यद्यपि सिविल प्रक्रिया अधिनियम, 1833, जूरी के संबंध में उल्लेख करता है और उसमें केवल जूरी को ही ब्याज देने का वैवेकिक अधिकार दिया गया है। किंतु फिर भी यदि कोई मामला मध्यस्थ को निर्देशित किया जाता है—ऐसा मामला जिसके संबंध में जूरी ब्याज दिला सकते थे— तो मध्यस्थ भी समान रूप से ब्याज दिला सकता है और ऐसी स्थिति उस अधिनियम में प्रयुक्त भाषा के बावजूद है। इस मामले के सिद्धांत को कोर्ट आफ अपील ने **चंद्रिस** बनाम **स्वांडसर मोलर कंपनी इनकारपोरेशन**[1] वाले मामले में लागू किया है और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि लैंड रिफार्म्स (मिसलेनियस प्राविजंस ऐक्ट) 1934 (भूमि सुधार प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1934) की धारा 3 के शब्दों के अनुसार न्यायालय को किसी भी ऋण या नुकसानी पर ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति मध्यस्थ को लागू नहीं होती थी। संविदा का यह एक विवक्षित निबंध था कि मध्यस्थ ऐसे मामले में ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता था जहां न्यायालय उसे अधिनिर्णीत कर सकता था। कोर्ट आफ अपील ने यह बतलाया कि ब्याज अधिनिर्णीत करने की मध्यस्थ की शक्ति उसके समक्ष पेश की गई दलीलों से उसे प्राप्त होती है, जो विवक्षित रूप से उसे "विवादग्रस्त सभी बातों को संविदा की विद्यमान विधि के अनुसार पर्याप्त अधिकार और वैवेकिक उपचार का प्रयोग करते हुए जो एक न्यायालय को दी गई है, विनिश्चय करने की शक्ति थी और यह कि लैंड रिफार्म्स (मिसलेनियस प्राविजस ऐक्ट, 1934) [भूमि सुधार (प्रकीर्ण उपबंध) अधिनियम, 1934] जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया अधिनियम, 1833 की धारा 28 निरसित कर दी गई थी, मध्यस्थों की शक्तियों से संबधित नहीं थी और यह कि वादी मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत ब्याज के लिए हकदार था।

भारत में भी यही विधिक स्थिति है। **भवानीदास रामगोबिंद** बनाम **हरसुखदास बालकिशनदास**[2] वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने जिसमें न्या० रानकिन और मुखर्जी थे, यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनिर्णय की तारीख के पश्चात् ब्याज के लिए डिक्री प्राप्त करने की शक्ति मध्यस्थ को प्राप्त थी और उसके द्वारा **एडवर्ड्स** बनाम **ग्रेट वेस्टर्न रेलवे**, **शेरी** बनाम **ओक** और **वीहन** बनाम **वोल्फ**, वाले मामलों में इंग्लिश केसों के विनिश्चय का स्पष्ट रूप से अनुमोदन किया है। इसी प्रकार की राय इस न्यायालय ने हाल ही में दिए एक निर्णय अर्थात् **फर्म मदनलाल रोशनलाल महाजन** बनाम **हुकमचंद मिल्स लि० इंदौर** में अभिव्यक्त की है। तदनुसार हमारा यह मत है कि मध्यस्थ को अधिनिर्णय की तारीख से न्या० मलिक द्वारा डिक्री दिए जाने की तारीख तक ब्याज मंजूर करने का प्राधिकार था तथा श्री बिंद्रा मामले के इस पहलू पर कोई अच्छी दलील देने में असमर्थ रहे हैं।"

26. ऊपर वर्णित अवतरण से यह ज्ञात होता है कि न्यायालय ने दो सिद्धांत अधिकथित किए थे। (i) निर्देश का यह एक विवक्षित निबंधन है कि मध्यस्थ विद्यमान

---

[1] 1951 (1) के० बो० 240.

विधि के अनुसार विवाद का विनिश्चय करेगा और ब्याज की बाबत ऐसा अनुतोष देगा यदि वह विवाद का विनिश्चय करता जैसा कि कोई न्यायालय दे सकता था। (ii) यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 वस्तुत: माध्यस्थम् कार्यवाहियों को लागू नहीं होती है किंतु उस धारा का सिद्धांत मध्यस्थ द्वारा ऐसे मामलों में ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए लागू किया जाएगा, जिन मामलों में किसी वाद में किसी न्यायालय को धारा 34 के अधीन आने वाली विषय-वस्तु पर अधिकारिता हो और वह ब्याज के लिए डिक्री मंजूर कर सकता हो। इस बात पर ध्यान देना भी सुसंगत है कि इस विनिश्चय में दोनों इंग्लिश विनिश्चयों, अर्थात् एडवर्ड्स और चंद्रिस वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का अनुमोदन किया गया है तथा इस न्यायालय द्वारा दिए गए फर्म मदनलाल रोशनलाल वाले मामले के विनिश्चय का भी अनुमोदन किया है। यह महत्वपूर्ण बात है कि इस विनिश्चय थावरदास वाले मामले के विनिश्चय को उसी प्रकार स्पष्ट और प्रभेदित किया गया है जैसाकि फर्म मदनलाल रोशनलाल वाले मामले में किया गया था।

27. इस प्रकार श्री सांघी ने जो दलील दी है, उस पर विचार करना उपयुक्त होगा। दलील यह है कि इस मामले में न्यायालय ने बहुत स्पष्ट शब्दों में यह वर्णित किया है कि "वाद में के सभी विवाद जिसमें ब्याज का प्रश्न सम्मिलित था, मध्यस्थ को विनिश्चय किए जाने के लिए निर्देशित किए गए थे।" उन्होंने यह दलील दी कि उक्त कथन को देखते हुए इस न्यायालय को यह कहने की छूट नहीं है कि वह लंबित वाद में निर्देश नहीं था। किंतु उसने यह स्वीकार किया कि निर्णय को पढ़ने पर यह प्रतीत नहीं होता है कि वह लंबित वाद में निर्देश है। फिर भी उन्होंने यह दलील दी कि हम उसे ऊपर उद्धृत वाक्य को ध्यान में रखते हुए लंबित वाद से अन्यथा निर्देश का मामला नहीं मान सकते। हम इससे सहमत नहीं हैं। निर्णय में वर्णित तथ्यों का परिशीलन करने से यह स्पष्ट है कि "वाद में" शब्दों का प्रयोग जो ऊपर उद्धृत वाक्य में किया गया है, आकस्मिक या टाइप संबंधी त्रुटि है।

28. **मैसर्स अशोक कंस्ट्रक्शन कं० बनाम भारत संघ**[1] वाला लंबित वाद के मामले से अन्यथा माध्यस्थम् का मामला था। मध्यस्थ ने अपना अधिनिर्णय दिया था और राशि के शोध्य हो जाने की तारीख से ब्याज भी अधिनिर्णीत किया था। उच्चतम न्यायालय के समक्ष किए गए आक्षेप में से एक यह था कि ब्याज अधिनिर्णीत करने में मध्यस्थ ने अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया है इस आक्षेप पर नीचे वर्णित शब्दों में विचार किया गया —

> "..........नियत तारीख के पश्चात् विधारित रकम पर ब्याज के लिए अपीलार्थियों ने दावा किया है और मध्यस्थ उस दावे को विनिश्चित करने के लिए समक्ष था। माध्यस्थम् करार के खंड 25 में यह उपबंधित है :
>
> संविदा में अन्यथा उपबंधित होने के सिवाय विनिर्देशों, डिजाइनों, ड्राइंगों

[1] 1971 (3) एस० सी० सी० 66.

और अनुदेशों जिनके प्रति पहले वर्णित किया गया है, के अर्थ से संबंधित सभी प्रश्न और विवाद तथा काम में कारीगरी की क्वालिटी और प्रयुक्त की गई सामग्री या किसी अन्य प्रश्न के संबंध में कोई दावा, अधिकार, वाद या वस्तु जो भी हो, जो किसी भी प्रकार से संविदा से उद्‌भूत होती हो या उससे संबंधित हो, डिजाइनों, ड्राइंगों, विनिर्दिष्टयों प्रक्कलनों, अनुदेशों, आदेशों या वे शर्तें या अन्य बातें जो संकर्म से संबधित हों, उन्हें निष्पादित करने में सफलता या असफलता जो भी हो, जो कार्य की प्रगति के दौरान या उसके पूरा हो जाने के पश्चात् या उसके त्याग दिए जाने पर अधीक्षण इंजीनियर, के एकल न्याय-निर्णयन के लिए निर्देशित की जाएगी।"

× × ×

माध्यस्थम् करार के निबंधनों में संविदा के अधीन शोध्य रकम पर ब्याज के दावे को ग्रहण करने के सम्बन्ध में मध्यस्थ की अधिकारिता अपवर्जित नहीं की गई है। मध्यस्थ का अधिनिर्णय अविधिमान्य नहीं कहा जा सकता।"

29. इस निर्णय का सिद्धांत यह है कि चूंकि ब्याज के लिए दावे को ग्रहण करने के संबंध में मध्यस्थ की अधिकारिता माध्यस्थम् करार के द्वारा अपवर्जित नहीं की गई थी, अतः वह संविदा के अधीन शोध्य रकम पर ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए सक्षम था। यद्यपि इस प्रतिपादना के लिए कोई भी विनिश्चय प्रोद्धृत नहीं किए गए हैं, किंतु यह बात एडवर्ड्स वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के अनुकूल है जैसे वे चंद्रिस वाले मामले में समझे गए हैं।

30. **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **सेट एंड स्केलटन प्रा० लि०**[1] वाले मामले में विवाद ठेकेदार और मध्य प्रदेश राज्य के बीच में कतिपय ऐसे संकर्मों के संबंध में जो ठेकेदार ने किए थे, उद्‌भूत हुआ था। मध्यस्थ नियुक्त किया गया था। किंतु उसकी नियुक्ति के सम्बन्ध में भी विवाद था और यह विवाद इस न्यायालय में आया। इस न्यायालय ने पक्षकारों की सहमति से एकल मध्यस्थ नियुक्त किया और यह निदेश दिया कि माध्यस्थम् के अभिलेख एकल मध्यस्थ को भेज दिए जाएं। मध्यस्थ ने अधिनिर्णय दिया और निर्देश किए जाने की तारीख से और पहले की तारीख से साधारण ब्याज अधिनिर्णीत किया। प्रत्यर्थी ठेकेदार ने अधिनिर्णय के निबंधनों के अनुसार एक डिक्री पारित करने के लिए एक पिटीशन फाइल कर दिया जिसका इस न्यायालय के समक्ष राज्य की ओर से विरोध किया गया। इस न्यायालय के समक्ष जिन प्रश्नों की संयाचना की गई, उनमें से एक यह था कि क्या मध्यस्थ को अधिनिर्णय की तारीख से पूर्ववर्ती तारीख से ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता थी या निदेश की तारीख से डिक्री की तारीख तक ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता थी जैसा कि उसने किया था। राज्य की ओर से यह दलील दी गई कि उसे ऐसी कोई शक्ति नहीं थी और इस दलील के समर्थन में बंगाल नागपुर रेलवे वाले पूर्वोक्त मामले का प्रिवी काउंसिल के विनिश्चय के प्रति और थावरदास वाले पूर्वोक्त मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय और अन्य विनिश्चयों का अवलंब लिया गया। इस

[1] 1972 (3) एस० सी० आर० 233.

1991(12) eILR(PAT) SC 1

न्यायालय ने बंगो स्टील एंड फर्म मदनलाल रोशन लाल वाले मामले में दिए गए विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया और यह बतलाया कि थव्वरदास वाले मामले का विनिश्चय फर्म मदनलाल रोशन लाल वाले मामले में इस आधार पर प्रभेदित किया गया है कि "इस आधार पर कि उक्त विनिश्चय में इस प्रश्न के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है कि क्या मध्यस्थ माध्यस्थम् कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता है यदि उस वाद में के सभी विवाद जिनमें ब्याज का दावा किया गया है माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किए गए थे।" फर्म मदनलाल वाले मामले के विनिश्चय के प्रति निर्देश करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

"हमारे समक्ष जो मामला है, उसमें इस संबंध में कोई संविवाद नहीं है कि ब्याज सहित रकम के संदाय के दावे को सम्मिलित करते हुए सभी विवाद मध्यस्थ को निर्देशित किए गए थे। जैसा पहले बतलाया गया है मध्यस्थ ने यह निष्कर्ष निकाला कि फर्म कीमत के रूप में 179,653 रु० 18 पैसे की राशि के संदाय के लिए हकदार थी। मध्यस्थ ने आगे यह निष्कर्ष निकाला कि यह रकम फर्म द्वारा 7 जून, 1958 को प्रदत्त किए गए माल की कीमत के अतिशेष के रूप में संदेय बन गई थी। 7 जून 1958 को अन्तिम निरीक्षण किया गया था। यदि यह बात है तो माल विक्रय अधिनियम, 1930 की धारा 61 पूर्ण रूप से लागू होती है और यह धारा विक्रेता (इस मामले में फर्म) के ब्याज वसूल करने के अधिकार को व्यावृत्त करती है जहां विधि के अनुसार ब्याज वसूलनीय है धारा 61 की उप-धारा (2) जो सुसंगत है इस प्रकार है—

"61 (2) तत्प्रतिकूल संविदा के अभाव में न्यायालय कीमत की रकम पर ऐसी दर से जैसी वह ठीक समझे ब्याज—

(क) विक्रेता को उस वाद में जो उसने कीमत के लिए किया है, माल की निविदा की तारीख से या उस तारीख से जिस तारीख को कीमत संदेय थी, अधिनिर्णीत कर सकेगा,

(ख) क्रेता को उस वाद में जो उसने विक्रेता की तरफ से संविदा के भंग की दशा में कीमत के प्रतिदान के लिए किया है, उस तारीख से अधिनिर्णीत कर सकेगा जिस तारीख को कीमत का संदाय किया गया था।"

हमारे समक्ष के मामले में, स्पष्ट रूप से ही संविदा में इस बात का उपबंध नहीं किया गया है कि रकम पर कोई ब्याज जो उनमें से किसी को भी शोध्य पाया जाए, संदेय नहीं है। यदि ऐसा है, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विक्रेता अर्थात् फर्म उस तारीख से ब्याज का दावा करने के लिए हकदार है जिस तारीख को कीमत शोध्य और संदेय बन गई थी। इस मामले में मध्यस्थ का निष्कर्ष यह है कि कीमत 7 जून, 1958 को संदेय बन गई थी। इस न्यायालय ने भारत संघ बनाम ए० एल० रालिया राम वाले मामले में जैसा निर्धारित किया है और जो मामला माध्यस्थम् कार्यवाहियों से सम्बन्धित था, किसी प्रतिकूल संविदा के अभाव में धारा 61 की उपधारा (2) के अधीन विक्रेता बेचे गए माल की कीमत की रकम पर ब्याज प्राप्त करने के लिए पात्र होता है। इस सिद्धांत के आधार

1991(12) eILR(PAT) S

पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 7 जून, 1958 से ब्याज अधिनिर्णीत किया जाना न्यायसंगत है।

31. इस प्रकार मत व्यक्त करने के पश्चात् न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किए—

"यदि श्रोफ की यह दलील कि किसी भी परिस्थिति में मध्यस्थ अधिनिर्णय की तारीख से पहले या निर्देश की तारीख के पहले की कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत नहीं कर सकता, स्वीकार की जाती है तो स्थिति बहुत ही विसंगत हो जाएगी। उदाहरण के लिए, हम यह बतला सकते हैं कि ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें मध्यस्थ को निर्देशित किया जाने वाला एकमात्र प्रश्न यह हो कि क्या कोई पक्षकार उसे शोध्य रकम पर ब्याज का दावा करने के लिए उस तारीख से हकदार है जो निर्देश की तारीख से बहुत पहले की तारीख हो। जब मध्यस्थ को ऐसा प्रश्न निर्देशित किया जाता है तो स्वाभाविक रूप से ही उसे यह विनिश्चित करना होता है कि क्या पक्षकारों द्वारा निर्देशित तारीख से ब्याज अधिनिर्णीत किया जाने का दावा मंजूर किए जाने योग्य है या नहीं। यदि मध्यस्थ वह दावा मंजूर कर लेता है तो वह उस तारीख से ब्याज अधिनिर्णीत करेगा जो निर्देश की तारीख से भी बहुत पहले की तारीख होगी। अतः अन्ततः प्रश्न यह होगा कि क्या जो विवाद मध्यस्थ को निर्देशित किया गया था, उसमें किसी विशिष्ट कालावधि के लिए ब्याज का दावा सम्मिलित है या क्या पक्षकार संविदा द्वारा या प्रथा या विधि के किसी उपबंध के द्वारा किसी विशिष्ट तारीख से ब्याज के लिए हकदार है।"

32. इस बात पर ध्यान देना सुसंगत है कि इस विनिश्चय का सिद्धांत वैसा ही है जैसा कि अशोक कंस्ट्रक्शन कं० एडवर्ड्स और चंद्रिस वाले मामलों में वर्णित सिद्धांत हैं।

33. श्री मिलन बनर्जी ने यह दलील दी कि जैना वाले मामले में न्या० चिनप्पा रेड्डी ने इस न्यायालय के छह विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया था। (जिन्हें विद्वान् न्यायाधीश ने इस प्रकार के मामलों के रूप में निर्देशित किया था जिनमें न्यायालय द्वारा मध्यस्थ को निर्देश, वाद में के सभी विवादों के सम्बन्ध में किया गया था) केवल दो मामले ऐसे थे जो उस प्रकार थे जबकि 4 मामले वैसे नहीं थे। दूसरे शब्दों में उनकी दलील यह थी कि 6 मामलों में से केवल नचिअप्पा चेट्टियार और फर्म मदनलाल रोशनलाल वाले ऐसे मामले थे जिनमें लंबित वाद में माध्यस्थम् के लिए निर्देश किया गया था जबकि अन्य 4 मामलों में अर्थात् सतिन्दर सिंह, बंगो स्टील, अशोक कंस्ट्रक्शन और सेठ एंड स्केल्टन वाले मामले ऐसे थे जहां माध्यस्थम के लिए निर्देश लंबित वाद से अन्यथा था। हमने सभी 6 मामलों के तथ्यों के प्रति पहले ही निर्देश कर दिया है और हम यह पाते हैं कि विद्वान् न्यायाधीश ने जो दलीलें दी हैं, वे सही हैं। हम यह भी बतला दें कि नचिअप्पा चेट्टियार वाले मामले के विनिश्चय में तीनों प्रकार की कालावधि के लिए ब्याज निर्देश से जैसे, पहले, वादकालीन और अधिनिर्णय के पश्चात् (के ब्याज) के सम्बन्ध में विचार किया गया है। जबकि फर्म मदनलाल रोशनलाल वाले मामले में केवल वादकालीन ब्याज पर

विचार किया गया है। सतिंदर सिंह वाला मामला जैसा इसके पहले बतलाया गया है, माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन आने वाला मामला बिल्कुल भी नहीं था। किंतु वह पंजाब स्थावर संपत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, 1948, (पंजाब रिक्यूजीशन एण्ड एक्वीजीशन आफ इममूवेबल प्रापर्टी ऐक्ट, 1948) के अधीन उद्भूत मामला था। बंगो स्टील वाले मामले में अधिनिर्णय के पश्चात् की कालावधि के लिए ब्याज की बाबत विचार किया गया था जब कि अशोक कंस्ट्रक्शन वाले मामले में साधारण तौर पर शोध्य तारीख के बाद के ब्याज अधिनिर्णीत करने की मध्यस्थ की शक्ति पर विचार-विमर्श किया गया था जिसमें स्पष्टतः ही वाद कालीन ब्याज भी सम्मिलित था। सेठ एन्ड स्केल्टन वाले मामले में निर्देश से पहले की कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने की मध्यस्थ की शक्ति पर विचार किया गया था।

34. आस्ट्रेलिया के हाई कोर्ट ने भी इस प्रश्न पर गवर्नमेंट इंश्योरेंश आफिस ने **एन० एस० डब्लू०** बनाम **अटकिंसन-लेघटन ज्वाइंट वेंचर**[1] वाले मामले में विचार किया था। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थियों ने मेरीटाइम सर्विसिज बोर्ड आफ एन० एस० डब्लू० के साथ किए गए एक करार के अधीन एक तटबंध का सन्निर्माण करने के लिए उच्च न्यायलय के समक्ष सहमत हुए ठेकेदार की रिस्क्स पालिसीज, आफ इंश्योरेंश के द्वारा गवर्नमेंट इंश्योरेंस आफिस आफ एन० एस० डब्लू० संबिदा संकर्मों की बाबत भविष्य में अनजाने में हानि या नुकसानी के लिए ज्वाइंट वेंचर्स को क्षति पूर्ति करने के लिए सहमत हुए। नीति (पालिसी) में कई बातें अपवर्जित की गई थीं जिनसे हमारा संबंध नहीं है। तटबंध का सन्निर्माण 1971 में प्रारम्भ हुआ। जब सन्निर्माण कार्य प्रगति पर था, तब एक भीषण तूफान आया जिससे सन्निर्माणाधीन तटबंध को बहुत अधिक हानि हुई। इसके बाद बार-बार तूफान आते रहे तटबंध को नुकसान पहुंचते रहा ज्वाइंट वेंचर ने बीमाकर्ता के विरुद्ध दावा पेश किया जो रद्द कर दिया गया जिसके पश्चात् इंश्योरेंस पालिसी में उपबंध किए गए अनुसार एक मध्यस्थ नियुक्त किया गया। मध्यस्थ ने प्रत्यर्थी के पक्ष में निष्कर्ष निकाला किंतु आर्बीट्रेशन ऐक्ट, 1902, (एन० एस० डब्लू०) के उपबंधों के अनुसार सुप्रीम कोर्ट आफ न्यू साउथ वेल्स की राय के लिए विशेष मामले के तौर पर उसे भेजा। दो प्रश्न वर्णित किए गए जिनमें से द्वितीय प्रश्न हमारे प्रयोजनों के लिए सुसंगत है। वह इस प्रकार है—

> "क्या मध्यस्थ को माध्यस्थम् के अनुक्रम में अधिनिर्णीत किसी रकम पर ब्याज का अधिनिर्णय करने की शक्ति थी।"

35. एन० एस० डब्लू० की सुप्रीम कोर्ट ने प्रश्न का सकारात्मक उत्तर दिया। तदनुसार मध्यस्थ ने अधिनिर्णय दिया। तब बीमाकर्ता ने अधिनिर्णय को अभिलेख पर देखे जाने से ही ज्ञात होने वाली त्रुटि के आधार पर अपास्त करने के लिए आवेदन किया जबकि प्रत्यर्थी ने उसे न्यायालय की डिक्री बनाने के लिए आवेदन किया। मामला अततः हाई कोर्ट आफ आस्ट्रेलिया के समक्ष पहुंचा जहां यह दलील दी गई कि मध्यस्थ को उसके समक्ष विवाद के लंबित रहने की कालावधि के लिए 'वादकालीन' ब्याज अधिनिर्णीत करने

[1] 146 सी० एल० आर० 206.

1991(12) eILR(PAT) SC

की शक्ति नहीं थी। बहुसंख्यक न्यायाधीशों ने (न्या० स्टीफन, मेसन और मर्फी) ने चंद्रिस, एडवर्ड्स और पोडार ट्रेडिंग वाले मामलों सहित अन्य दूसरे मामलों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थ को ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति है। न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में अपना मत व्यक्त किया—

"... उन परिस्थितियों में मैं न्यू साउथ वेल्स कोर्ट आफ अपील द्वारा अभिव्यक्त मतों की पुष्टि करूंगा जो ब्याज अधिनिर्णीत करने की बावत मध्यस्थों की शक्तियों से संबंधित हैं। न केवल यह बात बहुत अधिक महत्वपूर्ण नजीरों के अनुकूल है किन्तु मुझे यह प्रतीत होता है कि उस नजीर में सिद्धांत की कोई गलती नहीं है। तथापि उसका प्रवर्तन पूर्ण रूप से फायदाप्रद है क्योंकि उसके द्वारा मध्यस्थों को पक्षकारों के बीच न्याय करने की शक्ति प्रदत्त की गई है और दलील दिए जाने पर अधिनिर्णय की तारीख तक ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए मध्यस्थ समर्थ बनाए गए हैं। वे ऐसा ब्याज शोध्य पाई गई रकम पर अधिनिर्णीत कर सकते हैं। यह ऐसी शक्ति है जिसकी जरूरत ऐसे समय में और अधिक है जब धन महंगा है। यह बात ब्याज की प्रचलित ऊंची दरों से स्पष्ट होती है—दि मायरन (28)।"

निःसंदेह मु० न्या० बारविक और न्या० विल्सन ने अपनी विसम्मति प्रकट की है। उनके मतानुसार मध्यस्थ को ऐसी कोई शक्ति नहीं है किन्तु बहुसंख्यक न्यायाधीशों का मत उस राय के समरूप है जो हमारी राय है।

36. हाल्सबरीज लाज आफ इंग्लैंड जिल्द 2, पृष्ठ 273 (पैरा 534) पर वर्णित है—

"साधारणतः, माध्यस्थम् करार के पक्षकार उसमें ऐसे खंड सम्मिलित कर सकते हैं जिन्हें सम्मिलित करना वे उपयुक्त समझें। तथापि कानून द्वारा माध्यस्थम् करार में कतिपय बातें विवक्षित होतीं हैं जब तक कि उसके विपरीत आशय उसमें या तो अभिव्यक्त हो या विवक्षित हो। फिर भी माध्यस्थम् करार में यह एक विवक्षित निबंधन होता है कि मध्यस्थ को विवाद मामूली (सामान्य) विधि के अनुसार विनिश्चित करना चाहिए। इसमें प्रक्रिया से संबंधित आधारभूत नियम सम्मिलित होते हैं। यद्यपि पक्षकार अभिव्यक्त रूप से या विवक्षित रूप से इन नियमों से विचलन करने के लिए सहमत हो सकते हैं। मामूली सिद्धांत जिनके आधार पर किसी करार में निबंधन विवक्षित किए जाते हैं, उन पर उस संदर्भ में विचार करना होगा कि करार किसी माध्यस्थम् से संबंधित है।"

37. पृष्ठ 303 पैरा 580 में ब्याज के अधिनिर्णीत किए जाने पर विचार करते हुए यह कहा गया है—

"किसी मध्यस्थ या अधिनिर्णायक को किसी ऋण या नुकसानी की रकम पर उस पूरी कालावधि के लिए या उस कालावधि के किसी भाग के लिए जो उस तारीख के बीच की तारीख हो जब वाद हेतुक उद्भूत हुआ हो और अधिनिर्णय दिया गया हो, ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति है।"

1991(12) eILR(PAT) SC 1

38. पैरा 592 मध्यस्थ द्वारा की जाने वाली कार्यवाहियों से और उस साक्ष्य से संबंधित है जिसके आधार पर मध्यस्थ कार्य कर सकता है। चूंकि हमें यह पैराग्राफ उपयुक्त प्रतीत होता है, हम उसे नीचे उद्धृत करते हैं—

माध्यस्थम् करने वाले अधिकरण के तौर पर उस हैसियत में कार्यवाहियों का संचालन करने में मध्यस्थ या अधिनिर्णायक को उन निदेशों के आधार पर कार्यवाही करनी चाहिए जो निर्देश के करार में ही अंतर्विष्ट हों। ऐसे निदेशों के अध्यधीन जहां तक व्यवहार्य हो, उसे उन नियमों का पालन करना चाहिए जो न्यायालय में किसी कार्यवाही में लागू होते हैं जिसमें वे नियम भी सम्मिलित हैं जो विवाद्यक विबंध से संबंधित हैं किंतु वह उन नियमों से विचलन कर सकता है परन्तु उपबंध यह है कि ऐसा करते समय वह न्याय के सारतत्व की उपेक्षा नहीं करे। न्याय के मूल तत्वों में ये नियम हैं कि हर एक पक्षकार को यह जानने का अधिकार है कि उसके विरुद्ध क्या मामला तैयार किया गया है तथा साथ ही उसे अपना पक्ष पेश करने का भी अधिकार है किंतु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि पक्षकार मौखिक सुनवाई के लिए हकदार है। पुनः मध्यस्थ साक्ष्य के नियमों से आबद्ध है और यद्यपि पक्षकार इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि न्यायालयों में साक्ष्य के जिन नियमों का अनुपालन किया जाता है, उनका कड़ाई से अनुसरण नहीं किया जाएगा। किंतु उसे ऐसे साक्ष्य को ग्रहण नहीं करना चाहिए और उसके अनुसार कार्यवाही नहीं करनी चाहिए जो स्पष्ट रूप से ही अग्राह्य हो और जो उस प्रश्न से मूलरूप से संबंधित हो जिसका विनिश्चय मध्यस्थ को करना हो। तथापि अब साधारण तौर पर अनुश्रुति साक्ष्य ग्राह्य है।

39. अब हम उन विनिश्चयों पर विचार करना उपयुक्त समझते हैं जिन्हें श्री सांसी ने अपनी दलील के समर्थन में प्रोद्धृत किया है।

40. उसने जिस पहले विनिश्चय का अवलंब लिया है, **वह भारत संघ बनाम वेस्ट पंजाब फैक्ट्रीज लिमिटेड**[1] वाला मामला है। उसने पृष्ठ 590 पर आए अवतरण के प्रति यह दलील देने के लिए निर्देश किया कि इस मामले में संविधान न्यायपीठ ने थावरदास वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अनुमोदन कर दिया था। हम इस से असहमत नहीं हैं। वह प्रश्न जिस पर संविधान न्यायपीठ उक्त पैराग्राफ में विचार कर रहा था, यह था कि क्या वाद के संस्थित किए जाने के पहले की कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत किया जा सकता है। (उक्त मामला माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन नहीं था किंतु वह एक सिविल वाद था। उस संदर्भ में न्यायालय ने थावरदास वाले मामले के प्रति निर्देश इस प्रकार किया जैसा कि उसमें उस निमित्त सही विधि अधिकथित की गई हो। साथ ही **बंगाल नागपुर रेलवे**[2] और **भारत संघ** बनाम **ए० एल० रलियाराम**[3] वाले मामले के प्रति भी निर्देश किया है। इस पैराग्राफ को इस प्रकार पढ़ना संभव नहीं है जैसा कि इसके द्वारा थावरदास वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का वहां तक अनुमोदन किया गया हो या उसकी पुष्टि की गई हो जहां तक कि उसके द्वारा यह अभिनिर्धारित

[1] [1966] (1) एस० सी० आर० 580,
[2] 65 आई० ए० 66,
[3] 1964 (3) एस० सी० आर० 164,

1991(12) eILR(PAT) SC 1

किया गया है कि मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति नहीं थी।

41. इसके पश्चात् श्री सांघी ने रलिया राम वाले ऊपर वर्णित विनिश्चय का अवलंब लिया जिसके प्रति संक्षेप में निर्देश करना पर्याप्त होगा। उक्त मामला निर्देश किए जाने से पहले की कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने की मध्यस्थ की शक्ति से सबंधित था। बंगाल नागपुर रेलवे (ऊपर वर्णित) वाले मामले में प्रिवी काउंसेल के विनिश्चय का अनुसरण करते हुए तथा साथ ही थावरदास वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मध्यस्थ को उक्त कालावधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति उस कारण से ही नहीं थी किन्तु उसने ऐसा मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत समझा। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि निर्देश पूर्व की कालावधि के लिए ब्याज अधिष्ठायी विधि, प्रथा या करार से संबंधित बात है। तदनुसार, उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रथा, संविदा या विधि के किसी ऐसे उपबंध के अभाव में जिसके द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत किया जाना न्यायसगत हो, नुकसानी के तौर पर ब्याज अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता। हमारा यह विचार नहीं है कि इस मामले की वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने के संबंध में मध्यस्थ की शक्ति के प्रश्न से कोई सुसंगतता है।

42. दोनों पक्षों की ओर से दूसरे कुछ अन्य विनिश्चय भी प्रोद्धृत किए गए। किंतु हम इस निर्णय को उनसे बोझिल करना आवश्यक नहीं समझते क्योंकि वे ऐसे मामले नहीं हैं जो माध्यस्थम् अधिनियम या माध्यस्थम् से संबंधित बातों से उदभूत हुए हों।

43. यह प्रश्न अब भी शेष रहता है कि क्या मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति है और यदि ऐसी शक्ति है तो वह किस सिद्धांत के आधार पर है। हम यह बात दोहरा दें कि हम एक ऐसी स्थिति के संबंध में विचार कर रहे हैं जहां इस प्रकार ब्याज मंजूर किए जाने का करार में उपबंध नहीं है और न ही उस में ऐसा ब्याज मंजूर किए जाने का प्रतिषेध है। दूसरे शब्दों में हम एक ऐसे मामले पर विचार कर रहे हैं जिसमें ब्याज अधिनिर्णीत किए जाने का कोई उल्लेख नहीं है। ऊपर वर्णित विनिश्चयों का दिग्दर्शन करने पर निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं।

(i) कोई व्यक्ति जो ऐसे धन के उपयोग से वंचित कर दिया जाता है जिसके लिए वह विधिमान्य रूप से हकदार है, उसे इस प्रकार वंचित किए जाने के लिए प्रतिकर प्राप्त करने का अधिकार है चाहे इसे किसी भी नाम से कहा जाए। चाहे इसे ब्याज, प्रतिकर या नुकसानी कहा जाए। यह आधारभूत बात मध्यस्थ के समक्ष विवाद के लंबित रहने की कालावधि के लिए उतनी ही विधिमान्य है जितनी कि वह निर्देश पर मध्यस्थ द्वारा विचार करने के पहले की कालावधि के लिए विधिमान्य है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 का यह सिद्धांत है और मध्यस्थ के मामले में इसके विपरीत अभिनिर्धारित करने के लिए कोई कारण या सिद्धांत नहीं है।

(ii) पक्षकारों के बीच उठने वाले विवादों को सुलझाने के लिए मध्यस्थ एक आनुकल्पिक फोरम है। यदि ऐसा है तो उसे पक्षकारों के बीच उठने वाले सभी

विवादों या मतभेदों को विनिश्चित करने की शक्ति होनी चाहिए। यदि मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की कोई शक्ति नहीं है, तो ऐसे ब्याज का दावा करने वाले पक्षकारों को उस प्रयोजन के लिए न्यायालय में आवेदन करना होगा भले ही उन्होंने मध्यस्थ से अन्य दावों के संबंध में समाधानप्रद अनुतोष प्राप्त कर लिया हो। इससे कार्यवाहियों का बाहुल्य होगा।

(iii) मध्यस्थ करार के आधार पर अस्तित्व में आता है। पक्षकारों को इस बात की छूट होती है कि वे उसे ऐसी शक्तियां प्रदत्त करें और अनुसरण किए जाने के लिए ऐसी प्रक्रिया विहित करें जो वे ठीक समझते हैं और जहां तक ये बातें विधि के विपरीत नहीं हैं ऐसा किया जा सकता है। (माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 और 3 के उपबंध को उदाहरण के साथ समझने की दृष्टि से देखिए।) साथ ही करार विधि के अनुरूप अवश्य ही होना चाहिए। मध्यस्थ का यह कर्त्तव्य है कि वह देश की साधारण विधि और करार के अनुसार कार्यवाही करे और अपना अधिनिर्णय दे।

(iv) पिछले कई वर्षों से इंग्लिश और भारतीय न्यायालयों ने इस धारणा के आधार पर कार्य किया है कि जहां करार से कोई पक्षकार प्रतिषिद्ध न हो और निर्देश का पक्षकार ब्याज के लिए दावा करता है तो मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति होनी ही चाहिए। थावरदास वाले मामले का इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में अनुकरण नहीं किया गया है। उक्त विनिश्चय इस आधार पर स्पष्ट किया गया है और सुभिन्न बतलाया गया है कि उक्त मामले में ब्याज के लिए कोई दावा नहीं किया गया था किन्तु अपरिनिर्धारित नुकसानी के लिए ही दावा किया गया था। यह बात बार-बार कही गई है कि उक्त निर्णय में के संप्रेक्षणों का आशय ऐसा कोई आत्यंतिक या सर्व-व्यापक नियम अधिकथित करने का नहीं था जैसा कि पहली बार देखने पर प्रतीत होता है। जैना के मामले तक इस देश के संभवतः सभी न्यायालयों ने वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की मध्यस्थ की शक्ति को विधिमान्य ठहराया था। सातत्य और निश्चितता विधि का बहुत अधिक वांछनीय तत्व है।

(v) वादकालीन-ब्याज अधिष्ठायी-विधि की विषय-वस्तु उस प्रकार नहीं जिस प्रकार कि निर्देश-पूर्व की कालावधि के पहले की कालावधि के लिए ब्याज है। पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने की दृष्टि से इस शक्ति का हमेशा ही अनुमान किया गया है।

44. ऊपर वर्णित बातों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह विचार है कि नीचे वर्णित सिद्धांत सही सिद्धांत है जिसका इस निमित्त अनुसरण किया जाना चाहिए।

जहां पक्षकारों के बीच करार में ब्याज मंजूर किए जाने का प्रतिषेध न हो और जहां कोई पक्षकार ब्याज का दावा करता है और उक्त विवाद (मूल राशि के लिए या उससे स्वतंत्र रूप से ही दावा किया जाता है) मध्यस्थ को निर्देशित किया जाता है, तो

1991(12) eIL

उसे वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति होगी। यह इस कारण से है कि ऐसे मामले में यह अवश्य उपधारणा की जानी चाहिए कि पक्षकारों के बीच करार के निबंधनों में ब्याज एक विवक्षित निबंधन था और इसलिए जब पक्षकार अपने सभी विवादों को निर्देशित करते हैं या ब्याज के आधार पर विवाद के मध्यस्थ को निर्देशित करते हैं तो उसे ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति होगी। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक मामले में मध्यस्थ को वादकालीन ब्याज आवश्यक रूप से ही अधिनिर्णीत करना चाहिए। यह ऐसी बात है तो उसके विवेकाधिकार के अंतर्गत आती है जिसका प्रयोग वह मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए करता है। साथ ही न्याय के उद्देश्यों को भी ध्यान में रखता है।

45. ऊपर वर्णित कारण से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि जैना वाले विनिश्चय में जहां तक वह ऊपर वर्णित प्रतिपादना के विरुद्ध है, सही विधि अधिकथित नहीं की गई है।

46. ऊपर किए गए विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि दोनों अपीलें अर्थात् 1986 को सिविल अपील सं० 1403 और 1985 की सिविल सं० 586 में मध्यस्थ ने वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने में अपनी अधिकारिता के अंतर्गत कार्य किया है और उच्च न्यायालय ने ठीक ही अधिनिर्णय को कायम रखा है। परिणामस्वरूप दोनों अपीलें असफल होती हैं और तदनुसार खारिज की जाती हैं। किन्तु खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाएगा। यद्यपि हमने यह अभिनिर्धारित किया है कि जैना वाले मामले के विनिश्चय में सही विधि अधिकथित नहीं की गई है फिर भी हम यह निदेश देंगे कि हमारे विनिश्चय का प्रवर्तन भविष्यलक्षी होगा जिससे अभिप्रेत है कि इस विनिश्चय से कोई भी पक्षकार न तो इस बात के लिए हकदार बन जाएगा और न वह इस बात के लिए सशक्त बन जाएगा कि किसी भी न्यायालय की कार्यवाहियों को फिर से प्रारंभ किया जाए जो पहले ही अंतिम बन चुकी हों। दूसरे शब्दों में, इस मामले में जो विधि घोषित की गई है, वह केवल लंबित कार्यवाहियों को ही लागू होगी।

47. 1991 की सिविल अपील सं० 2565 और 1990 की विशेष इजाजत अर्जी संख्या 5428 का जहां तक संबंध है, वे इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए विनिश्चित किए जाने के लिए उपयुक्त न्यायपीठ के समक्ष रखी जाएंगी।

तदनुसार उत्तर दिया गया।

मि०